७०१५
१.३.६

'पतिता' में आचार्य चतुरसेन की कला, कल्पना और चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक कहानियां ली गई हैं। इनमें कुछ तो क्लासिक का स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। आचार्यजी ने सैकड़ों सुन्दर कहानियां लिखी हैं; पर ये कहानियां सुन्दरतम हैं। विषय और शिल्प की दृष्टि से भी इन कहानियों में पर्याप्त विविधता है।

स्वर्गीय आचार्य चतुरसेनजी का पुरानी पीढ़ी के कलाकारों में प्रमुख स्थान है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। कहानी, उपन्यास, नाटक—सभी कुछ आपने लिखा है और बहुत सुन्दर लिखा है। आपकी एक सौ से ऊपर रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

महान कथाकार स्वर्गीय आचार्य चतुरसेन की रसवंती भावधारा से पूर्ण सुन्दरतम कहानियां! आचार्यजी की सशक्त शैली, अपूर्व वातावरण-सृष्टि और जीवन्त चित्रण की बेजोड़ कृतियां!

आचार्य चतुरसेन

आचार्यजी की आठ उत्कृष्ट कहानियां

पतिता

२००१९
१०.२.६८

क्रम

१. पतिता ... ५
२. दुखवा में कासे कहूं मोरी सजनी २८
३. प्यार ... ३७
४. दे खुदा की राह पर ... ५७
५. पुरुषत्व ... ६६
६. मास्टर साहब ... ८१
७. नवाब ननकू ... १०४
८. खूनी ... १२१

पतिता

मेरा नाम आनन्दी है। जब मेरी उम्र ग्यारह वर्ष की थी, तब मैं अपनी मौसी के साथ दिल्ली आई। मैंने कभी दिल्ली देखी न थी, सुनी थी। बहुत तारीफ सुनी थी। बिजली की रोशनी, ट्राम, पंखे, मोटर—सब कुछ मेरे लिए स्वप्न-सा था। अब तक मैं देहात में रही, पहाड़ में खेली और बड़ी हुई थी। मेरे मा-बाप जमींदार थे, नाम जबान पर लाना नहीं चाहती, मैं कलंकित हुई, उन्हें क्यों बट्टा लगाऊं? मैं उनकी इकलौती बेटी थी, गोदों में पली और प्यार में नहाई। मेरे बराबर सुखी कौन था! जब मैं सुनहरी धूप में तितली की तरह उछलती-कूदती सामने की हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों पर दौड़-धूप करती थी, मेरी पड़ोसिनें गीत गातीं, घास का गट्ठर पीठ पर लादे मेरे सामने से निकल जातीं। झरने का मोती के समान उज्ज्वल और बर्फ के समान ठंडा पानी इठला-इठलाकर पीती, उसमें पत्थर मारकर उसे उछालती, कभी पत्ते की नाव बनाकर बहाती।

ओह! मैं कितनी हंसती थी! हंसते-हंसते आंसू निकल आते थे। आज तो रोने पर भी नहीं निकलते। मालूम होता है, कलेजे का सारा रस सूख गया है। लड़कियों को मैं खूब मारती, पर पीछे उन्हें पुचकार-पुचकारकर राजी भी कर लेतीं। मुझमें अकड़ खूब थी, पर मैं भोली भी एक ही थी। जो कोई मुझसे प्यार से बोलता, मैं उनकी चाकर; जो जरा टेढ़ा हुआ और बस मैं भी टेढ़ी।

जीवन क्या होता है, मैंने कभी नहीं जाना; मैं बड़ी हो जाऊंगी, यह मैंने नहीं सोचा, मुझपर दुनिया की कोई जिम्मेदारी पड़ेगी, इसका ध्यान भी न था। भविष्य की आनेवाली सारी आंधियों और

तूफानों के भय से दूर मैंने हिमालय की पवित्र और सुखमयी गोद में अपने हीरे-मोती-से ग्यारह साल व्यतीत किए।

दिल्ली देखकर मैं गुमसुम सहम गई थी और मौसी के घर में घुसते तो भय लगता था। वह घर था?—देदीप्यमान इन्द्रभवन था। वह सजावट देखकर मेरी आंखें बन्द होने लगीं। बढ़िया रंग-बिरंगे कालीन, दूध के समान उज्ज्वल चांदनी, बड़े-बड़े मसनद, मखमली गद्दे, मसहरियां, तस्वीर, उगालदान, आइने और न जाने क्या-क्या? मेरे पद-स्पर्श से छू लेने से कहीं कोई वस्तु मैली न हो जाए, बिगड़ न जाए—इस भय से मैं सिकुड़कर एक कोने में खड़ी हो गई। मैं मैली-कुचैली गांव की अल्हड़ बच्ची इस घर में कहां रहूंगी? रह-रहकर भाग जाने की इच्छा होती थी।

मौसी ने मेरी द्विविधा को भांप लिया। उसने पास आकर दुलार से कहा, "जा बेटा! ऊपर हीरा है और भी कई जनी हैं, तू भी वहीं जाकर बैठ।"

मैं ऊपर चल दी। क्या देखा—कह ही दूं? रूप वहां बिखरा पड़ा था, मानो किसीने चांद को जोर से जमीन पर दे मारा हो और उसके टुकड़े बिखरे पड़े हों। सब दस-पन्द्रह थीं; सभी एक से एक बढ़कर। सभी अलबेली-मस्तानी थीं और चुहलबाजी में लगी थीं। किसीकी कंघी-चोटी हो रही थी, किसीका उबटन; कोई धोती चुन रही थी, कोई गजरा गुथ रही थी। सभी नवेलियां थीं। यौवन उनके अंगों से फूट रहा था। यौवन और सौन्दर्य के ऊपर एक और उन्मादिनी वस्तु थी, जिसे तब न समझा था; बहुत दिन बाद, जब मैं भी उनमें मिल गई, समझा—वह थी वेश्यापन की धृष्टता। और उसने उन्हें आफत बना रखा था।

वे लड़कियां न थीं, स्त्रियां भी न थीं, वे थीं आग के छोटे-छोटे अंगारे। पड़े दहक रहे थे, छूते ही ज्वाला उत्पन्न कर दें। इन सबके बीच में हीरा थी। उसका भी कुछ वर्णन तो करना ही पड़ेगा। वैसा रूप तब से आज तक, यद्यपि मैंने जीवन-भर रूप के सौदे किए—पर देखा ही सुना भी नहीं। इटली के कारीगर की बनाई संगमरमर की प्रतिमा

की भांति, हंस की सी सुराहीदार और सफेद गर्दन उठाए वह बैठी बाल सुखा रही थी। एक धानी दुपट्टा उसके वक्षस्थल पर अस्त-व्यस्त पड़ा था, पर उस अनिन्द्य वक्षस्थल को शृंगार करने के लिए और किसी परिधान की आवश्यकता ही न थी। प्रभातकालीन नवविकसित कमल-पुष्प के समान उसकी बड़ी-बड़ी आंखें और फूले हुए लाल-लाल होठ! हल्के पारदर्शी रंग से प्रतिबिम्बित-से गाल उसकी मुखमुद्रा को लोकोत्तर बना रहे थे। उसके दांत किस कारीगर ने बनाए थे, यह मैं मूर्ख क्या बताऊं? पर उनकी चमक से चौंध लगती थी। हीरा ने अनायास ही मुझे देखा, सभी ने देखा। मैं सहमकर ठिठक गई। उसने मुस्कराकर पास बुलाया, गोद मे बिठाकर पुचकारा, प्यार किया, मेरे देहाती वस्त्रों को देखा और हंस दी। उसने प्यार से मेरे गालों पर चुटकी ली और मेरे शृंगार में लग गई। उबटन किया, चोटी मे तेल दिया, कपड़े बदले और न जाने क्या-क्या किया। इसके बाद मेज पर उचकाकर मुझे रख दिया और सहेलियों से बोली, "देखो री, हमारी छोटी रानी कितनी सुन्दर है!" उसने मुझे चूमा, फिर तो मुझपर इतने चुम्मे पड़े कि मैं घबरा गई। उन चुम्मों मे, उस प्यार मे, उस शृंगार मे मैं भूल गई—अपना बचपन, वे पवित्र खेल कूद, वे पर्वत-श्रेणी, उपत्यकाएं, माता-पिता, सहेली—सभीको। मेरे मन मे एक रंगीन भाव की रेखा उठी और धीरे-धीरे मैं मदमाती हो चली।

परन्तु, उस भीषण ऐश्वर्य और ज्वलन्त रूप की जड़ में जो पाप था, उसे मैं कैसे समझती? पाप कहते किसे हैं, यही मैं कैसे जानती? जीवन के सुख और ऐश्वर्य के पीछे एक धर्मनीति छिपी रहती है, यह मुझे उस घर मे बताता कौन? फिर भी मेरी आत्मा ही ने मुझे बताया, वही आत्मा अन्त तक कर्मों का नियन्ता रही।

मैं उस घर मे सब कुछ देखती थी। मैं कह चुकी हूं कि मुझ-सी दस-पन्द्रह थीं, पर मैं सबसे छोटी थी, नई आई थी। सबके पृथक्-पृथक् सजे हुए कमरे थे; सबके पास बढ़िया गहने, कपड़े, इत्र और न जाने क्या-क्या था। सबकी खातिर खूब होती थी, चोचले भी चलते थे; पर मैं मौसी के पास सोती और रहती थी। सबके उजरे गजरे पहनना

इस साज-शृंगार में एक रहस्य है, पर मैं उमंग में थी।

देखते-देखते मेरा रंग बदल गया। जितने छैले घर में आए, मुझपर टूटे। पर मौसी का बड़ा भय था, क्या मजाल जो ज़रा कोई बढ़कर बातें करता! साथवालियों पर मुझे डाह थी, पर अब वे मुझपर जलती थीं। भेद तो अभी खुला न था, पर मुझे इसमें मज़ा आता था ज़रूर।

उस दिन से छठे दिन की बात है। मैं सो रही थी; दिन ढल चुका था; मौसी ने बुलाकर कहा, "बेटी, नहा-धोकर नई साड़ी पहन ले, बालों का अंग्रेज़ी जूड़ा बांध ले, पेरिस की ज़रीकट साड़ी पहन ले और ज़रा सलीके का ध्यान रख। खबरदार, नादानी न करना।" मैं कुछ समझी, कुछ नहीं—चली आई। मन में उथल-पुथल मच गई, नहीं कह सकती—भय से या आनन्द से।

रात घिर आ गई और मेरा शृंगार खत्म ही न होता था। दस बजे एक अल्पवयस्क सुन्दर कुमार ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। मैंने इन्हें कभी न देखा था। एकान्त में मेरे पास किसी पुरुष का आना प्रथम बात थी, पर बहुत-सी बातें तो मैं देख-भालकर ही समझ गई थी। फिर भी मैं डर गई। मैंने सहमकर उनसे कहा, "मौसी उधर है, आप वहां जाइए।"

उन्होंने हंसकर कहा, "जल्दी क्या है? ज़रा देर आपसे भी बात कर लूं!" अब मैं क्या कहती? चुप बैठ गई!

उन्होंने कहा, "क्या आप नाराज़ हो गईं?"

"जी नहीं।"

"फिर चुप्पी क्यों?"

"आप कुछ दरयाफ्त करें तो जवाब दूं।"

बस बातों का सिलसिला चल गया, और क्या-क्या हुआ, वह अब कहने से फायदा? सबका अभिप्राय यही है कि अन्त में मैं उस युवक के हाथ बिकी, उसने मुझे सब कुछ दिया और मैंने उसे भी! मैं वेश्या थी भी नहीं, और उसकी वृत्ति को समझती भी न थी। मेरा जीवन था, उम्र थी, समय था और उसका प्रभाव था। मैं क्या करती? मैंने अपना तन-मन उसे दिया—और उसने, मैंने जो आज तक न पाया था, वह दिया। उस दान के सम्मुख अब तक के सभी ठाट तुच्छ थे।

मैं नारी-जीवन का रहस्य समझी । पर यहीं तक होता तो मेरे बराबर सुखी कौन था ! पर मेरी तकदीर में वेश्या-जीवन का रहस्य समझना लिखा था ।

एक महीना स्वप्न की तरह बीत गया । ज्यों-ज्यों महीना बीतता था, वे चिंतित और उदास होते थे । मैं पूछती, पर वे बताते नहीं, टाल जाते । एक दिन मैंने उन्हें घेर लिया । उन्होंने कह दिया, "सिर्फ तीन दिन और मुझे तुमपर अधिकार है आनन्दी । इसके बाद तुम मेरे लिए गैर हो जाओगी ।"

"यह क्या बात है ?"

"मैं तुम्हारे लिए अगले महीने की तनख्वाह नहीं जुटा सकता ।"

"तनख्वाह कैसी ?"

"तीन हजार रुपये महीने पर मैंने तुम्हें तुम्हारी मां से ले लिया था ।"

"आह ! क्या मैं गाय-भैंस की तरह बेची गई हूं ?"

"ऐसा होता तो फिर क्या बात थी ? मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाता, जहां किसीकी दृष्टि न जाती । पर तुम किराये पर उठाई गई हो । मैंने एक महीने का किराया दिया · अब जो देगा वह मेरे स्थान पर होगा ।"

मैं तड़प उठी, "वह कैसे संभव है ? मैं तुम्हें प्यार करती हूं ! क्या तुम नहीं करते ?"

"जान से बढ़कर ।"

'फिर हमारे बीच में कौन है ?"

"रुपया ।"

"मैं उसपर लात मारती हूं ।"

"पर तुम्हारी मौसी तो उसपर मरती हैं ।"

"मैं उससे कहूंगी ।"

"बेसूद है ।"

"क्या तुमने कहा था ?"

'मैं एक हजार देने को तैयार हूं ।"

"वे क्या थोड़े है ?"

"वे कहती है, 'एक हजार माहवारी आनन्दी की जूतियों का खर्च है।' "

"पर मै तो अपना शरीर और जान तुम्हे दे चुकी !"

"इसका तुम्हें अधिकार नही।"

"मैं रोने लगी, वे चले गए।

मैं रात-भर रोती रही, मेरी आंख फूल गई और छाती फटने लगी। सुबह होते ही मौसी ने कहा, "बेटी, आज तुझे एक मुजरे पर जाना है, सब सामान तैयार करके लैस हो जाना।"

जो कहना चाहती थी, कह न सकी। सोचा—लौटकर कहूंगी।

मेरा नाम हीरा है, बस इतना ही समझ लीजिए। मैं और कुछ नही बता सकती। समझ लीजिए, मै धरती फोड़कर पैदा हुई और धरती मे समा जाने की इच्छा से जी रही हू। हजारों मनुष्यों ने मेरे शरीर को देखा, बलात्कार किया और होनी-अनहोनी सब हुई। इनमें राजा-महाराजाओं से लेकर घृणास्पद कलकी और रोगी भी थे—सभीने एक ठीकरे मे खाया। लोग कहते हैं कि मैंने रूप पाया और यह भी कहते हैं कि उसे खूब बेचा। पर मुझे सब कुछ बेच-खरीदकर मिला क्या ? इस अभागिनी के मन की बात कौन सुनेगा ? कौन इसपर आंसू बहाएगा ? जगत् मे मेरा सगा है कौन ?

फन के कीड़ों का नाम बहुतों ने सुना होगा, पर उस जहरीले कीड़े ने खाया मुझे ! हाय दुनिया कैसी प्यारी थी ! कैसा साज-शृंगार, वस्त्र, सुगन्ध, मौज-बहार हास्य—उन स्वर्गों जब याद करती हू—वे सब कहां चली गईं, स्वप्न की माया की तरह !

स्त्री सदा वस्तु है, यह मुझे आज मालूम हुआ, जब मैंने स्त्रीत्व खो दिया। धर्म मेरा साक्षी है। मैंने रूप को बेचा नहीं। मैंने उसका मोल कभी न जाना, न लिया। अभागिनी सीधी-सादी बालिका अपने रूप को कितना देखती—देखनेवाले देखते है, यही कैसे समझती, यही तो मरने की बात हो गई। मै जब तक बच्ची रही, तब तक की तो बात ही जाने दीजिए; पर दिल्ली आने पर ? न मां थी, न बाप

था; भाई था—वह भी मर गया। पर जो भी, वह मां से भी ज्याद
लगी। स्वयं हाथों से नहलाती, उबटन लगाती, सुगन्ध लगाती, गज
से सजाती और मोटर में बैठाकर सैर कराती; तब कौन मेरे बराब
सुखी था! मुझे कुछ काम न था। उस्तादजी आते, उनकी सफे
दाढ़ी, भद्दी-सी मोटी ऐनक और मीठी-मीठी बोली, कैसी प्यारी थी
वे गाना सिखाते, मैं विनोद से उनके गले की नकल करती। वह इत
ठीक उतरती कि अम्मा हंसते थके हो जाते। मैं इठलाती थी, उत्त
से उत्तम भोजन-वस्त्र बिना मांगे हाजिर थे। मैं बड़ी हुई, तीस
पहर से ही उबटन-शृंगार, केश-विन्यास और नई साड़ियों को पस
और पहनने का जो उपक्रम चलता तो दीये जल जाते। इस से सज
हुए उस कमरे में नर्म कालीन पर मैं इठलाकर बैठती। बड़े-बड़े से
के जवान आते, मेरी स्वर-लहरी पर लोट जाते, रुपयों की बौछ
करते। जब आधी रात बीतने पर झोली-भर रुपये ले मैं नई मां
देती, तो वह छाती से लगा लेती। बारम्बार 'बेटी' कहती। मैं ज
भी थकान न मानती, पड़कर जो सोती तो प्रभात था।

हाय! मैं समझती थी—यह सब मेरा आदर है, गायन-व
मेरा गुण है, उसपर सैकड़ों गुणज्ञ रीझ रहे हैं, पर यह भेद तो
खुला। वह मेरा नहीं, मेरे शरीर का, रूप का आदर था। वह गा
तो एक बहाना, एक छल था, एक तीर था, जिससे शिकार मारे
थे। मेरी अज्ञानावस्था में कितने शिकार मारे गए, यह मैं अब
बताऊं!

उस दिन कोई त्योहार था, शायद तीज थी। मैं नहाकर बैठी
मेरी एक सहेली ने मुझे बुला भेजा था। मैं जाने की तैयारी में थ
मां ने बुलाया, कहा, "बेटी, वह जो नई बनारसी साड़ी आई है,
ले। आज तेरी तकदीर का सितारा बुलन्द हुआ। महाराज ने
नौकर रख लिया है। तुझे वहां जाना है, अभी मोटर आ रही है
चाहा था कि तुझे रानी बना दूंगी। वह इच्छा पूरी हुई; अब
।"

ख़ाक-पत्थर कुछ भी न समझी। रानी बनने की बात क
रानी बनने में मुझे क्या उज्र था; पर नौकरी का

मतलब ? मैंने पूछा, "नौकर रखने से क्या मतलब ? मैं किसीकी नौकरी करूंगी ? वाह ! अब मैं झाड़ू लगाऊंगी और किसीकी नौकरी करूंगी ?"

बुढ़िया हंस पड़ी, हंसते-हंसते लोट गई। उसने मुझे गोद में छिपाकर कहा, "मेरी प्यारी बेटी कैसी नादान है ! धीरे-धीरे सब समझेगी। झाड़ू तू लगावेगी ? वहां बीस दासी तेरी खिदमत करेंगी।'

मैं समझ तो न सकी, पर मुझे आनन्द न आया। मैं भय और चिन्ता में पड़ गई। वहां मेरा है कौन ? मुझे कौन प्यार करेगा, कौन मया करेगा ? मैं बेचैन हो गई। मैं मूर्खा इस बुढ़िया को ही अपना सबसे बड़ा हितू समझती थी।

जहां गई वहां फाटक पर पहुंचते ही मेरे होश उड़ गए। ऐसी बड़ी कोठी, ऐसा सुन्दर बगीचा जन्म में भी न देखा था। गाड़ी पहुंचते ही संगीनधारी सिपाही ने गाड़ी रोककर पूछा, "गाड़ी में कौन है ?"

मौसी ने कुछ कान में कह दिया, वह रास्ता छोड़कर खड़ा हो गया।

गाड़ी धड़धड़ाती चली। फव्वारे उछल रहे थे, रौंसें अत्यन्त सुघड़ाई से कटी थीं और उनमें कटोरे के बराबर गुलाब खिल रहे थे। सुन्दर, साफ, सुर्ख सड़कें और सामने वह महासुन्दर धवल प्रासाद ! वहां पहुंचते ही दो सन्तरियों ने हमें उतारा। तमाम मकान संगमरमर से मढ़ा था, मक्खी के भी पैर रपटें। मैं डरती-डरती पैर रखती, दीवारों और तस्वीरों को देखती, अचल खड़े सन्तरियों को घूरती चली जा रही थी। चलने तक की आहट न होती थी। सोच रही थी, 'हे ईश्वर ! इस महल में रहनेवाला कौन भाग्यवान है !'

एक सजे हुए कमरे में हमें बिठाकर सन्तरी चला गया। उसमें मखमल का हाथ-भर मोटा गद्दा पड़ा था और साटन के पर्दे दरवाजों पर थे। गद्देदार कुर्सियां, कोच और एक से एक बढ़कर सजावट और तस्वीरें। क्या-क्या बयान करूं ? मैं पागल-सी बैठी देख रही थी; हृदय धक्-धक् कर रहा था। बोलना चाहा, पर मौसी ने होंठ पर उंगली रखकर संकेत कर दिया।

थोड़ी देर में एक पहरेदार ने आगे में मशाल उठाकर हमें अपने पीछे-पीछे आने का संकेत किया। कई बड़े-बड़े दालान, कमरे पार करती हुई अन्त में एक निहायत खूबसूरत सजे हुए कमरे में पहुंचा दिया, एक शीशमहल [illegible] [illegible] [illegible] और तेज रोशनी [illegible] एक पुरुष मसनद के सहारे बैठे [illegible] रहे हैं। मौसी ने जमीन तक झुककर सलाम किया और मैंने भी। हुक्के की निगाली एक ओर फेंककर महाराज उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़ी बेतकल्लुफी से मौसी का हाथ पकड़कर बैठाया, फिर मुस्कराकर मेरा मिजाज पूछा।

मैं तो मानो सकते की हालत में थी। मौसी ने खखारकर कहा, 'बेवकूफ, सरकार मिजाज पूछते हैं और तू चुप है!"

वे हंस दिए और बोले, "डरती नहीं है न?"

"यह हुजूर की कनीज है!"

"सच, पर देखना धोखा तो नहीं देगी?"

"अय-हय हुजूर, मेरी जबान टूट जाए!"

"अच्छा मिस हीरा, क्या तुम सिगरेट पीती हो?"

"जी नहीं, सरकार!"

"अच्छा, तब कुछ खाओ-पिओ?" इतना कहकर उन्होंने घण्टी बजा दी। नौकर दस्तबस्ता आ हाज़िर हुआ। उसे कुछ इशारा करके उन्होंने मौसी का हाथ पकड़कर कहा, "जब तक यह कुछ खाए-पिए, हम लोग काम की बातें कर लें।".

वे दोनों दूसरे कमरे में चले गए और नौकरों ने फल, बिस्कुट, मेवा मेरे सामने ला रखे। पर मैंने छुआ भी नहीं। मैं भयभीत हो गई थी। मैं समझ गई कि यहां फंसी। हाय! हृदय के एक कोने में नवांकुरित प्रेम विकल हो उठा। पर करती क्या? मैंने निश्चय किया—मैं अवश्य मौसी के साथ जाऊंगी। हठात् महाराज ने कमरे में प्रवेश करके कहा, "अरे, तुमने तो कुछ खाया ही नहीं।"

"जी, मेरी तबीयत नहीं है। क्या मौसी अन्दर हैं?"

"वे गईं।"

"और मैं?"

"तुम्हें यहीं आराम करना है।" वे मुस्कराकर बोले, "क्या तुम्हें

र लगता है ?"

"जी नहीं।"

"यह जगह पसन्द नहीं ?"

"जगह के क्या कहने हैं !"

"मैं पसन्द नहीं ?"

"सरकार क्या फर्माते हैं !" मैं शरमा गई।

एक आदमी शराब, प्यालियां, और कुछ खाने की चीजें चुन ाया। महाराज ने प्याला भरकर कहा, "मिस हीरा, परहेज तो नहीं रतीं ? करोगी, तो भी पीना तो पड़ेगा !"

"हुजूर, मैं नहीं पीती।"

"मगर मेरा हुक्म है।"

"मैं मुआफी चाहती हूं।"

"क्या हुक्मउदूली करती हो ?"

"मेरी इतनी मजाल !"

"बेवकूफ औरत, पी !" क्षण-भर में उनकी आंखें लाल हो गईं और त्योरियां चढ़ गईं।

"मैं न पी सकूंगी !"

मूठी से चाबुक उठाकर उन निर्दयी ने खाल उड़ाना शुरू कर दिया। मेरे चिल्लाने से कमरा गूंज उठा। मैं तड़पकर धरती में लोटने लगी। पर वहां बचानेवाला कौन था ?

वे चाबुक फेंककर बैठ गए। मैं ज्योंही उठी, उन्होंने प्याला भरकर कहा, "पिओ !"

मैं गटगट पी गई।

मेरे हाथ से प्याला लेकर उन्होंने मेरे पास आकर कहा, "हीरा, मेरी दोस्त ! आइन्दा कभी हुक्मउदूली की हिम्मत न करना। अरे, क्या तुम्हारी साड़ी भी खराब हो गई !" इतना कह उन्होंने घण्टी बजाई। एक लड़का आ हाजिर हुआ। उसे हुक्म दिया, "जाओ, कपोड़ियों से एक उम्दा साड़ी ले आओ।"

साड़ी आई। उसकी कीमत दो हजार से कम न होगी। वैसी साड़ी मैंने कभी न देखी थी। मैं अवाक् रह गई। ऐसा बेदर्द आदमी

तो देखा न सुना। मैं साड़ी बदलकर चुपचाप उनके हुक्म की इन्तजारी करने लगी। मेरा गर्व और सारी चंचलता न जाने कहां चली गई।

उन्होंने निकट आकर प्यार के स्वर में कहा, "जाओ, उस कमरे में सो रहो, मैं भी जरा सोऊंगा। किसी चीज की जरूरत हो तो घण्टी देना, नौकर तुरन्त बजा लायेगा।"

हाय! क्या मैं सोई! वह पुरुष सो गया और मैं उसके पैर पकड़ बैठी रही। रात बीतने लगी, निस्तब्धता छा गई। हां, मैं पैर पकड़े बैठी थी, उस पुरुष के, जो इतना कठोर और इतना उदार, ऐसा मस्त और ऐसा ज़िद्दी था, और तस्वीर देख रही हूं किसी और की, जिसे मैंने कुछ दिन पूर्व शरीर अर्पण किया था। मेरा हृदय और प्रेम आवारागर्द बेघरबार पुरुष की तरह भटक रहा था। वेश्यावृत्ति का जटिल रहस्य अब मेरी समझ में आया।

कई घण्टे व्यतीत हो गए। वे एकाएक उठ बैठे। उन्होंने कहा, "बेवकूफ लड़की! क्या तू सचमुच वेश्या नहीं है? तेरे पास हृदय है? तू प्रेम करना जानती है?"

मेरे जवाब से प्रथम ही उन्होंने मुझे उठाकर हृदय से लगा लिया। हाय! यह पापिष्ठ शरीर यहां भी अर्पण करना पड़ा! पर मैं लज्जा से अपने-आपको भी नहीं देख सकती थी।

कह ही दूं, बिना कहे तो चलेगा नहीं; वैसा सुन्दर आदमी नहीं देखा था। रंग गुलाब के समान, दांत जैसे मोती की लड़ी, हास्य जैसे चांदनी की बहार—मैं देखती रह गई, यही महाराज थे। उन्होंने पास बुलाया, प्यार से बगल में बैठाया, क्या-क्या किया, क्या-क्या कहा, वह सब बड़ी कठिनाई से भुलाया है, अब याद क्यों करूं?

मैंने समझा था, मैं नौकर हूं; पर मैं थी रानी! नौकर थे राजा साहब! वे कितना प्यार करते थे, कितना लाड़ करते थे—मैं क्या होश में थी जो समझ सकती! पुरुष स्त्री-जाति को कब क्या देता है, पुरुष स्त्री-जाति को किस तरह सुख देता है, यह केवल वह स्त्री ही जान सकती है, जिसने वैसा सुन्दर, उदार, दाता, दयालु पुरुष पाया हो। मैं कृतार्थ हो गई, मैं धन्य हुई, मुझे अब कुछ न चाहिए था। रे पास रूप था, यौवन था, शरीर था, मन था, आत्मा थी, प्रेम था,

हृदय था- -सभी मैंने उन्हे दे दिया; और उन्होंने जो देना चाहा—रुपया-पैसा, वस्त्र, रत्न—सभी मैंने तुच्छ समझा। मैंने एक बार तो निर्लज्ज होकर कह दिया था, "यह सब क्यो करते हो ? तुम्ही जब मुझे प्राप्त हो, फिर और कुछ मुझे क्या चाहिए !" वे हसते थे। मेरे ये दिन हवा की तरह उड गए। मुझ मूर्ख ने यह समझा ही नही कि यह सब कुछ मेरे लिए नहीं, मेरे रूप के लिए है; और मैं स्त्री नही वेश्या हूं। इस वेश्यापन और रूप ही ने तो मुझे चौपट किया।

यह विधाता की भूल है कि वह वेश्या है। अगर महारानी रूप और गुण मे इससे शतांश भी होतीं तो कदाचित् जगत् की जूठी पत्तल चाटने की ज़िल्लत मे न पड़ता। लाखो मनुष्यो के सामने मैं राजा और महाराज हूं, पर इस औरत के सामने आज एक कुत्ता, जो अपनी नीच स्वाद-वृत्तियो की तृप्ति के लिए सदा उन्मत्त रहता हो। वह जिस दिन आई तभी से मैने उसे समझा। एक अफसोस तो यह है कि वह वेश्या है, दूसरा अफसोस यह कि वह यह बात अभी तक नही जानती। नारी-हृदय का नैसर्गिक प्रेम उसके पास अछूता था, वह उसने राई-रत्ती मुझे दिया; पर इससे फायदा ? वह मुझे वही समझती है, जो लाखो-करोडों स्त्रियां पुरुष प्राप्त करके समझती रही हैं। पर मैं तो यह जानता हू कि वह वेश्या है। उसकी मा ने मासिक वेतन लेकर उस काल के लिए उसके शरीर पर मुझे अधिकार करने दिया है, जब तक मैं वेतन देता रहूं। वह आत्मदान कर चुकी, यह तो सत्य है; पर इससे होता क्या है ? इस अधिकार और पद्धतिशून्य असामाजिक आत्मदान को मैं क्या करू ? क्या मैं खुल्लमखुल्ला उसे पत्नी कहने का साहस करूं ? सारे अखबार हाय-तोबा मचाकर धरती-आसमान उठा लेंगे। सरकार की आखें नीली-पीली अलग हो जावेंगी और सरदार, अफसर परिजन दम निकाल देंगे। वह रानी बनने योग्य है। उसके रानी बनने से उसकी नहीं, महल की शोभा है। परन्तु इस बात को तो देखिए कि यह व्यभिचार और रूप का क्रय-विक्रय तो सब अन्धे और बहरो की तरह देख-सुन रहे हैं, पर इस पाप को नीति और नियम के रूप में संसार नहीं देखना चाहता। फिर मैं क्यो ज़िल्लत लू ? मैं राजा हूं, युवा

हूं, सुन्दर हूं, धनी हूं, मैं भोग-विलास की हर चीज़ खरीदने में समर्थ हूं। मैं अपना मन धर्म-अधिकार में क्यों लगाऊं? कठोरता, हां, यह कठोरता और निष्ठुरता तो है, परन्तु राजा बनकर मनुष्य को कितना कठोर बनना पड़ता है! राज्य-व्यवस्था कायम करने के लिए कठोरता ज़रूरी है। यदि मैं आत्मसुख और शरीर-भोग के लिए भी ज़रा निष्ठुर बनूं तो कुछ हर्ज है? मैं उसे ठग नहीं रहा, मुआवज़ा दे रहा हूं। उसका और उसे मिलेगा क्या? वह वेश्या है, जब तक उसमें रस है, मैं भरपूर मोल देकर लूंगा, पीऊंगा, बखेरूंगा; जब जी में आएगा, फेंक दूंगा। अजी! यह स्त्री-जाति ही तो है। नदी की धार की तरह यह स्त्री-यौवन बहता है। पुरुष होकर सुयोग पाकर मैं क्यों सुप्राप्य यौवन को छोड़ूं? यह धन, राजसत्ता फिर किस काम आएगी? अन्ततः हमारा राजपद किस योग्य होगा? पूर्वकाल के राजागण युद्ध करते थे; जीवन, मृत्यु सदा उनके सम्मुख थी, देश के चुने हुए विद्वान, उनके मंत्री सदा उनके पास रहते थे। अब यह सब काम तो प्रबल प्रतापी हमारी दयालु सरकार कर रही है; हमें छुट्टी है। इस जीवन-भर के अवकाश में यदि हम जी भरकर यौवन और भोग को, जो धन से प्राप्त हो सकता है, न भोगें, तो हमारे बराबर अहमक कौन?

वह वेश्या है, वेश्या रहे—यह बात उसे समझ रखनी चाहिए; वह स्त्री नहीं बनी रह सकती। पुरुष से स्त्री को जो प्रतिदान वास्तव में मिलना चाहिए, वह उसे नहीं मिलेगा। जब तक वह यौवन के उभार पर है, वह मेरी है, मेरा सारा राज्य उसके पैरों में है। इसके बाद? इसके बाद भी चिन्ता क्या है! वह इतना संचित कर लेगी कि जन्म-भर को काफी होगा।

नख-शिख से श्रृंगार किए वेश्या के सामने आंख के अन्धे और गांठ के पूरे बेवकूफ और बेगैरत नौजवान कुत्ते दुम हिला-हिलाकर जो प्रेम और आदर प्रकट करते हैं, वही क्या वेश्या का सम्मान है? वेश्या की असलियत तो उनके 'वेश्या' शब्द में ही है। वह रज़ील, अछूत और भले घर की बहू-बेटियों के देखने की वस्तु भी तो नहीं। वे शरीफज़ादे-रईस और राजा, जो समय पर जूतियां उठाते और

जूतियां खाते हैं—यह तो सहन हो नहीं कर सकते कि कभी सामना होने पर भी अपनी घरवालियों से हमारा परिचय तक तो करा दें। अपनी रज़ील हैसियत हम समझती हैं, हमारे हीरे-मोती, महल-पलंग, मसहरी, मोटर, धन—कोई भी हमारी इस रज़ील हैसियत से हमारी रक्षा नहीं कर सकता। हाय! वेश्या के हृदय को छोड़कर और कौन स्त्री-हृदय इस भयानक अपमान की धधकती आग को हंसकर सह सकता है!

उस दिन मेह बरस रहा था। भयानक अंधेरा था। राजमहल स्टेशन से दूर न था, परन्तु महाराज शिकार खेलने वहां से अठारह मील के फासले पर गए थे। उनके अंगरेज़ दोस्त आए थे। वहीं उनकी दावत और जशन का नाच-रंग था। दर्जन-भर वेश्याएं उसमें बुलाई गई थीं। मैं अभागिनी भी उनमें एक थी। मेरे नाच और गाने की ख्याति ने ही मुझे इस विपत्ति में डाला था। पर मैं करती भी क्या! वेश्या पर उसकी कुटनी मां का असाध्य अधिकार होता है। मेरा शरीर अच्छा न था। मैं दो साइयां बजाकर आई थी, थकी थी' सर्दी-जुकाम भी था, पर मुझे आना ही पड़ा। चार सौ रुपये रोज़ की फीस छोड़ी भी कैसे जाती? सारी नवाबी तो उसीके पीछे थी। अंधेरी रात और दस मील का सफर! दस-बारह हम बदनसीब औरतें और हमारे मिरासी नौकर; साथ के लिए चार प्यादे सिपाही और सामान लादने को एक बेगार में पकड़ी हुई बैलगाड़ी और दो लद्दू टट्टू; बस, यह हमारे स्वागत का प्रबन्ध उपस्थित था। क्या ये कमीने राजा अपनी रानियों के लिए भी ऐसा ही स्वागत करने की हिम्मत कर सकते हैं? पर रानियों से हमारी निस्बत ही क्या?

सिपाहियों ने कहा, "बेगार में और कुछ मिला ही नहीं, सामान गाड़ी और टट्टू पर तथा हमें पैदल चलना होगा।" मैं तो धम्-से बैठ गई। इस अंधेरी रात में, बरसात के समय दस मील पैदल चलने से मैंने मरना ठीक समझा। मैंने साफ इन्कार कर दिया। सिपाहियों ने फबतियां उड़ाईं। अन्त में एक टट्टू पहले मुझे दे दिया गया। मैंने उसे ही गनीमत समझा।

हम भाग्यहीनों की इस ठाट की सवारी चली, जिन्हें वहां पहुंचते

ही अपनी चमक-दमक, रूप और नखरों से उन भेड़िये रईसों को उनके कमीने मेहमानों को पागल बनाता था। मैं चुपचाप टट्टू प कम्बल ओढ़े बैठी थी। कमर टूटी जाती थी और मैं गिरी जा थी। पानी का छींटा बीच-बीच में गिर जाता था, पर मैं जानती कि वहां पहुंचकर मुझे बहुत मेहनत करनी है, आराम इस नसीब कहां ?

तीन घंटे सफर करके हम वहां पहुंचे। पहुंचते ही पता लगा महाराज और पार्टी कबकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें तत्काल ही पेशवाज पहनकर महफिल में पहुंचना चाहिए। मैंने अधमरी-सी होक साथ की वेश्या से कहा, "अब इस समय तो मुझसे एक पग भी उठाया जाएगा।" उसने कहा, "बेवकूफ हुई है ! जल्दी कर, ऐ कहीं होता है !" उसने जल्दी-जल्दी दो-तीन पैग शराब पिलाई।

ओह ! मुझे सजना पड़ा। मेरा अंग-अंग टूट रहा था, मैं मरी जाती थी, मुझे ज्वर चढ़ रहा था, पर मेरे पास मिनट-मिनट पर सन्देश आ रहे थे। हीरा प्रथम ही से महाराज के पास थी। उसने कहला भेजा—आनन्दी, जल्दी कर, सभी लोग तेरा नाम रट रहे हैं। मेरा शृंगार हुआ। जड़ाऊ गहने, ज़री की पेशवाज़, मोतियों के दस्तबन्द और जड़ाऊ पेटी कसकर, इत्र और सेण्ट से तर-बतर हो, पाउडर से लैस हो, दो पैग चढ़ाकर मैं छमाछम करती महफिल में पहुंची; मैं क्या पहुंची, बिजली गिरी—लोग तड़प गए। हाय-हाय से महफिल गूंज गई, महाराज पागल हो रहे थे और दोस्त लोग उछल रहे थे। फूलों के गुलदस्ते मुझपर बरस रहे थे, वाह-वाह का तार बंधा था। क्षण-क्षण पर हरी, लाल, नीली बिजली की रोशनी पड़कर मुझे अमूर्त मूर्ति बना रही थी। पर मेरा सिर दर्द से फटा जाता था और जी मिचला रहा था, पर मैं मुस्कराकर छमाछम नाच रही थी। कहरवे की ठुमकी लेकर मैंने बिहाग का एक टप्पा छेड़ा, साज़िन्दे उसे ले उड़े। महफिल में सकते की हालत हो रही थी, तालियों की गड़गड़ाहट की हद न थी, नोट और गिन्नियों का मेंह बरस गया, पर मैं मानो मूर्छित होने लगी। मुझे कै आने लगी थी और मैं अपने को अब काबू न कर सकती थी। मैंने रोशनीवाले को आंख से एक संकेत

किया। एक बार झुककर महफिल को सलाम किया और भागी। महफिल में तालियां गड़गड़ा रही थीं, 'वन्स मोर' का शोर आसमान को चीरे डालता था। उधर मैं एक जोर की कै करके बेहोश हो गई थी।

मैं कब तक उस दशा में पड़ी रही, नहीं कह सकती। किसीने झकझोरकर जगाया। आंख खोलकर देखा, हीरा है। मैं उसे देखते ही उससे लिपट गई। ध्यान से देखते ही मुझे मालूम हुआ, हीरा का वह रूप-रंग उड़ गया है। वह पीली पड़ गई है और उसकी उन सुन्दर आंखों के चारों ओर नीले दाग पड़ गए हैं, गले की हड्डियां निकल आई हैं; उसे मैं देखती ही रह गई। वह मुझे इस प्रकार अपनी ओर देखते देखकर हंस पड़ी। हाय! यह हास्य भी कितना रूखा था! कौन हीरा के उस हास्य से सुखी होता? पर मेरे मुंह से बात न निकली। मैं नीची दृष्टि किए कुछ सोचने लगी।

हीरा ने कहा, "उठ, उठ आनन्दो! जल्दी कर, तुझे महाराज ने याद फरमाया है।"

उसके होंठ कांप गए, स्वर भी विकृत हो गया, मैं भी डर गई। मैंने कहा, "यह किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता। क्या मैं इस समय महाराज के पास जाने योग्य हूं?"

"इस बात से क्या बहस? तुझे चलना तो पड़ेगा ही!"

"मैं हरगिज न जाऊंगी।"

उसने प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरा, पुचकारा और कहा, "बेवकूफी न कर, यह रियासत है, अपना घर नहीं। महाराज की हुक्मउदूली की सजा तुझे मालूम है?"

"क्या मार डालेंगे?"

"यह तो कुछ सजा ही नहीं।"

"तब?" मैंने शंकित स्वर में पूछा।

"ईश्वर न करे कि तुझे फजीहत उठानी पड़े। मेरी प्रार्थना यही है कि उनकी इच्छा में दखल न देना। इसीमें खैर है।"

इतना कहकर उसने मुझे उठाया। पर मैं उठ सकती ही न थी।

किसी तरह उसने उठाया। अपनी एक बढ़िया साड़ी मुझे पहना दी
बालों का शृंगार कर दिया और कुछ अदब-कायदे की बातें समझ
कर ड्योढ़ियों तक पहुंचा आई। मैंने देखा, उसने मुंह फेरकर आं
पोंछ लिए।

मेरा शरीर [illegible] में काबू में न था। मैं संभल ही न सकी, ब
लाश की तरह महाराज के सामने गिर गई। वहां क्या हो रहा
यह सब मैं देख न सकी। मेरे होश-हवास दुरुस्त न थे, पर वहां सब
लुच्चे-लुंगाड़े, नीच-शराबी इकट्ठे थे। वे नर-राक्षस और पिशा
थे। वे शराब पी-पीकर पशु हो गए थे। उन्होंने [illegible]
मुझपर जैसी बीती, वह मैं वेश्या होकर भी वर्णन नहीं कर सकती
जगत् का कोई भी खूंखार पशु किसी अबला स्त्री पर इतना अत्याचा
न कर सकेगा। ज्वर में जलती हुई, थकी हुई, मुझ बदहवास, गरी
असहाय स्त्री के साथ उन कुत्तों ने क्या-क्या करने और न करने यो
किया ? सारा संसार यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मुझ
जो बीती और मैंने जो देखा, वह सम्भव भी हो सकता है, पर मे
साथ तो वह हुआ। जब तक मैं होश में रही और मेरे शरीर में ब
रहा, मैंने उन भेड़ियों को रोका, प्रतिकार किया; परन्तु मैं शीघ्र
बदहवास हो गई और मैं उसी अवस्था में डोली पर लादकर दि
निकलने से पूर्व ही दिल्ली को रवाना कर दी गई।

सेकण्ड क्लास के जनाने डब्बे में मैं अकेली थी। मैंने सब खि
कियां खुलवा दी थीं। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा से मेरी तबीय
हल्की हुई, पर रात जो मुझपर अत्याचार हुआ था वह असाधार
था। पर मैं जानती हूं कि जगत् के मर्द इससे क्षुभित न होंगे। वेश
के बाहरी स्वरूप को सभी देखते हैं, वह भीतरी रूप तो हम स
ही देखती हैं। मैं जरा उठकर देखने लगी, रेल की पटरी के बरा
ही बराबर सड़क थी। उसपर एक मोटर तेजी से दौड़ी चली आ र
थी। मोटर गाड़ी से दौड़ लगा रही थी। मुझे कौतूहल हुआ।
एकटक उसे देखने लगी। मैंने देखा, एक स्त्री उसमें बैठी बड़ी बेचै
से गाड़ी को देख रही है। स्टेशन आया, गाड़ी खड़ी हुई और

स्त्री घबराई हुई स्टेशन में घुस आई। एक कर्मचारी उसे मेरे डब्बे में बैठा गया। डब्बे में बैठते ही वह हांफने लगी और दोनों हाथों से मुंह ढककर बैठ गई। गाड़ी के चलते ही मैंने उसके पास जाकर कहा, "आपको कुछ तकलीफ है क्या ?" उसने चौंककर देखा, और मुझे देखकर जोर से मेरा हाथ पकड़कर कहा, "कुछ नहीं, ईश्वर का धन्यवाद है कि मेरी इज्जत बच गई। तुम कहां जा रही हो ?"

मैंने कहा, "दिल्ली।"

"मैं भी वहीं जा रही हूं। तुम्हारा घर किस मुहल्ले में है और तुम्हारे पति क्या काम करते हैं ?"

मैं क्या जवाब देती, मैं चुपचाप खड़ी रही। कुछ देर बाद समझकर मैंने कहा, "आपको कुछ मदद चाहिए, वह मैं कर सकूंगी; आप कहिए।"

"मैं तुम्हारे यहां कुछ घण्टे ठहरना चाहती हूं और अपने पति को तार द्वारा सूचना देना चाहती हूं। क्या तुम मेरे लिए इतना कष्ट करोगी ?"

"जरूर, परन्तु···" मैं फिर चुप हो गई।

"परन्तु क्या ?" उसने घबराकर कहा।

"[illegible]"

मेरा [illegible] रहा, आत्मग्लानि के मारे मैं मर रही थी।

उस स्त्री ने पूछा, "कहां से आ रही हो ?"

"महाराज की महफिल से।"

उसने घृणा और क्रोध से मेरी ओर देखा। उसने होंठ काटकर कहा, "उस हरामजादे को मैं मच्छर की तरह मसल डालूंगी, उसने मुझे भी तुम जैसी ही रण्डी समझा होगा।"

मेरे कलेजे में तीर लगा। मैंने धीरज धरकर कहा, "मैं उससे घृणा करती हूं, रात उसने मुझपर बड़ा जुल्म किया है। हम अभागिन स्त्रियों की तो सर्वत्र एक ही दशा है। मैं जो हूं वही रहूंगी, यह तो किस्मत है। पर आपकी कोई भी सेवा मैं खुशी से करूंगी, यदि आप

७०१५

चाहें।"

उसने मेरी तरफ देखा और कहा, "मेरे स्वामी इस स्टेट में इंजीनियर हैं। हम लोग पारसी हैं, पर्दा नहीं करतीं। इस पाजी ने मुझे और मेरे पति को एकसाथ खाने-पीने के लिए बुलाया था। वे कल से ही कहीं बाहर भेज दिए गए। इसने आज सुबह मुझे बुला भेजा कि साहब आए हैं, यहां बैठे हैं। मैं सीधे स्वभाव चली गई। पर यहां धोखा था। मेरी इज्जत बचानी थी, मैं गुसलखाने की राह निकलकर मोटर में भागी हूं। मैं सीधी वायसराय के पास जाना चाहती हूं। मैं दिखा दूंगी कि किसी महिला की आबरू उतारने की कोशिश करना किसी गुण्डे के लिए कैसा कठिन है, फिर चाहे वह गुण्डा महाराज ही क्यों न हो।"

इतना कहकर वह लाल-लाल आंखों से मुझे घूरने लगी। मैं अपराधिनी की भांति थर-थर कांपने लगी। क्या यह आश्चर्य की बात न थी? एक ऐसी वीर महिला के सामने, जो अपनी इज्जत बचाने को जान पर खेल गई है, मेरी जैसी जन्म-अभागिनी, जो उसी इज्जत को बेचकर पेट ही नहीं भरती, शान से रहना भी चाहती है—क्या खड़ी रह सकती थी! मैं खिड़की में मुंह डालकर रोने लगी।

वह उठकर आई, कहा, "रोती क्यों हो? क्या कोई कड़ी बात मेरे मुख से निकल गई? ऐसा हो तो माफ करना, मैं आपे में नहीं हूं।"

मैंने उसका आंचल उठाकर आंखों से लगाया, उसे चूमा और फिर मैं भरपेट रोई। मैंने अपना पाप स्वीकार किया। मैंने मुंह फाड़कर कह दिया, "ईश्वर ने जीवन में मुझे सच्ची स्त्री-रत्न के दर्शन करा दिए। ओह! हम लाखों बेबस नारियां इस पवित्र जीवन से वंचित हैं, कोई भी माई का लाल इसका उपाय नहीं सोचता।"

उसने मुझे छाती से लगाया, प्यार किया। वह पवित्र वीरांगना मुझ पतिता वेश्या, अधम अभागिनी को बेटी की तरह दुलार करती दिल्ली तक आई। किसी तरह मेरी कोई सहायता स्वीकार न की। बहुत कहने पर कहा, "मेरे पास रुपये नहीं हैं। तुम्हारे पास हों तो सौ रुपये दे दो। ये कड़े रख लो, छः सौ रुपये के हैं।" मैंने रुपये दे दिए। कड़े

देती न थी, पर वह बिना दिए कब रहती ! वह मेरी आखो से ओझल हो गई।

कृमिकीट से भी अधम और घृणास्पद वेश्या होकर भी जो मैंने रानी का गौरवास्पद पद छीनना चाहा, उस धृष्टता का जो दण्ड मिलना उचित था, वह मुझे मिला।

मैं जिस रूप पर इतराती थी और जिसकी सर्वत्र प्रशसा थी, महाराज भी जिसे देखकर थकते न थे, वह रूप अब निस्तेज हो गया। महाराज पर उसका नशा नही होता। वे और नवीनताओ की खोज मे लगे और मुझे अनुचरो के सुपुर्द कर दिया। हाय री लाञ्छना! वह सब बड़ी-बडी आशाए मृग-मरीचिका हो गई। जिनसे कल मैं, तुच्छ समझकर, पीकदान उठवाती थी, वे महाराज के सकेत से मेरे शरीर और आत्मा के अधिकारी हो गए। जैसे पवित्र पाठशाला मे विविध स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों से भरा हुआ थाल महाराज के छक-कर जीम चुकने पर जूठन भगी को मिलती है, मेरी दशा भी उसी पत्तल के समान थी। मुझे अब महाराज के आदेश से उन्हीके सम्मुख, उनके विनोदार्थ उनके नीच पशुसम पार्षदो से जघन्य कुकर्म बिना उज्र कराना और महाराज के लिए आई हुई नवीनाओ के बीच कुटनी का काम करना होता था।

क्या किसी स्त्री का हृदय बिना फटे रह जाए ? परन्तु मेरा हृदय फटकर भी न फटा। मैंने वह सब किया, जो मुझे आदेश दिया गया। उस दिन महफिल मे आनन्दी के रूप को देखकर महाराज और उनके कामुक कुत्ते उसपर लट्टू हो गए, और उस गरीब असहाय बालिका को उनके पास लाने का कार्य करना पड़ा मुझे। इच्छा हुई कि अभी विष खा लू; फिर सोचा, क्या मेरे मर जाने पर आज कोई रोएगा ? इस रस-रग मे ज़रा भी विघ्न पड़ेगा ? आनन्दी को भी क्या कोई बचा सकेगा ?

यह तो सम्भव नही है। मैं उसे चुमकार-पुचकारकर ले गई। वही हुआ जो भय था। वह उस दिन से शय्या पर पड़ी है। उसके शरीर का बूद-बूद रक्त निकल गया, पर रक्त-प्रवाह बन्द होता ही

गई। डाक्टर कहते हैं कि वह बचेगी नहीं, उसे खांसी और ज्वर भी हो गया है, और वह सूखकर कांटा हो गई है। मैं उसे देखने गई थी। क्या कहूं। हाय कर्मों का फल ? वह अब उठ-बैठ भी नहीं सकती। अभी उसकी उम्र भी बाल-किशोर कुमारी ही है और वह सभी कुछ भोग चुकी, सभी सुख पा चुकी, साथ ही परलोक के सभी अधिकार खो चुकी। आज मरी तो कल, वह जाएगी उस सर्वशक्तिमान पिता के पास। वह दयालु ईश्वर क्या अब भी उसे और दण्ड देगा! उसने पाप किया, पाप अपना जीवन बनाया, पाप में वह जी और मरी; पर पाप को उसने पाप समझा कब! नारी-जीवन पाकर, नारी-शरीर, नारी के सभी गुण पाकर वह बेचारी नारी-गरिमा से बिलकुल वंचित रही!

हां, मैं इसपर विचार करूंगी कि यह वेश्यावृत्ति क्या वस्तु है और इसका वास्तविक निराकरण है? इसके नाश का क्या कोई उपाय नहीं है? उन पुरुषों को धिक्कार है, जो स्त्रियों के रक्षक होकर भी स्त्री-जाति के इस कलंक को नाश करने का जरा भी उद्योग नहीं करते। आह, आनन्दी! तेरी जैसी कितनी प्यार की पुतलियां इसी तरह कुचली गईं! ये कमीने धनी, धन के बदले हमें प्रलोभनों में फंसाते हैं और हमारा यह लोक और परलोक नष्ट करते हैं। और खेद तो यह है कि इसका ज्ञान हमें तब होता है, जब हमारे बचने के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं। मैं क्या कर सकती थी! मैं उसके लिए अच्छी तरह रोकर चली आई।

मुझे मरने में बड़ा सुख है। रेलवाली उस महिला का हाथ मेरे मस्तक पर है। वह मुझे मृत्यु के बाद मार्ग बताएगी। अब जितना जल्द यह घृणित शरीर छूटे, अच्छा है। मैंने वे पलंग, साड़ी, शाल, आभूषण—सब त्याग दिए। मैं महादरिद्र की तरह मर रही हूं, पर मुझे गर्व है कि इस शरीर को छोड़ अब कोई अपवित्र वस्तु मेरे पास नहीं; और जिस स्वेच्छा से मैंने वे सब सामान त्यागे हैं, उसी तरह मैं इस शरीर को त्यागने को उत्सुक हूं। इसमें मुझे जरा भी दु:ख नहीं, पर खेद तो यह है कि अब स्नेहशील हीरा के दर्शन न होंगे। ऐसी प्रेम और त्याग की अप्रतिम मूर्ति, सौन्दर्य की राशि पृथ्वी में कितनी

उत्पन्न होती है ? सुना है कि वह पागल हो गई है और उस दिन आत्मघात की इच्छा से छत से कूद पड़ी थी। आखिर कहाँ तक सहन करती ? जिसे उसने मन, धन, शरीर दिया, उसीने उसे यहाँ तक गिराया ! मैं नारी हूँ, इस पुरुष-जाति को शाप देती हूँ कि इस जाति का नाश हो, इसका वंश नष्ट हो, इसकी मिट्टी ख्वार हो, जो अनजान अबलाओं की पवित्रता और जीवन को अपनी वासनाओं पर कुर्बान करते हैं ! यह पुरुष-जाति सदा रोग, शोक, दुःख, दरिद्र, पाप, कलह में अनन्तकाल तक पड़ी रहे" !

दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी

गर्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फागुन में सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की कलोलें करने वे सलीमा को लेकर कश्मीर के दौलतखाने में चले आए थे।

रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियां, बर्फ से सफेद होकर, चांदनी में बहार दिखा रही थी। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था और उसकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फीरोज़ी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुथी हुई उस फीरोजी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों की कमरपेटी पर अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में ज़री के काम के जूते पड़े थे, जिनपर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा हुआ था, जो पैर रखते ही हाथ-भर नीचे धंस जाता था। सुगन्धित मसालों से बने शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे कद के आईने लगे थे। संगमरमर के आधारों पर, सोने-चांदी के फूलदानों में ताज़े फूलों के गुलदस्ते रखे थे। दीवारों और दरवाज़ों पर चतुराई से गुंथी हुई नागकेसर और चंपे की मालाएं झूल रही थीं, जिनकी सुगन्ध से

कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगरी की देश-विदेश की वस्तुएं करीने से सजी हुई थी।

बादशाह दो दिन से शिकार को गए थे। इतनी रात होने पर भी नहीं आए थे। सलीमा खिड़की में बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। सलीमा ने उकताकर दस्तक दी। एक बांदी दस्तबस्ता हाजिर हुई।

बांदी सुन्दर और कमसिन थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा :

"साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बांसुरी ?"

बांदी ने नम्रता से कहा, "हुजूर जिसमें खुश हों।"

सलीमा ने कहा, "पर तू किसमें खुश है ?"

बांदी ने कंपित स्वर में कहा, "सरकार ! बांदियों की खुशी ही क्या !"

सलीमा हंसते-हंसते लोट गई। बांदी ने वंशी लेकर कहा, "क्या सुनाऊं ?"

बेगम ने कहा, "ठहर, कमरा बहुत गरम मालूम देता है, इसके तमाम दरवाजे और खिड़कियां खोल दे, चिरागों को बुझा दे, चटखती चांदनी का लुत्फ उठाने दे और वे फूलमालाएं मेरे पास रख दे।"

बांदी उठी। सलीमा बोली, "सुन, पहले एक गिलास शरबत दे, बहुत प्यासी हूं।"

बांदी ने सोने के गिलास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा, "उफ् ! यह तो बहुत गरम है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया ?"

बांदी ने नम्रता से कहा, "दिया तो है सरकार !"

"अच्छा, इसमें थोड़ा-सा इस्तंबोल और मिला।"

साकी गिलास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तंबोल मिलाया, और भी एक चीज़ मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही सांस में उसे पीकर बेगम ने कहा, "अच्छा, अब सुना। तूने कहा था कि तू मुझे प्यार करती है ; कोई प्यार का गाना सुना।"

इतना कह और गिलास को गलीचे पर लुढ़काकर मदमाती सलीमा उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढ़क गई और रस-भरे नेत्रों से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने वंशी का सुर मिलाकर गाना शुरू किया :

'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी...'

बहुत देर तक साकी की वंशी और कंठ-ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी खुद भी रोने लगी। साकी मदिरा और यौवन के नशे में चूर होकर झूमने लगी।

गीत खत्म करके साकी ने देखा—सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेज़ी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गए हैं, और तांबूल-राग-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। सांस की सुगंध से कमरा महक रहा है। जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती कांपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षस्थल धीरे-धीरे कांप रहा है। प्रस्वेद की बूंदें ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वंशी रखकर साकी क्षण-भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर कांपा, आंखें जलने लगीं, कंठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आंचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुंह चूम लिया।

फिर ज्योंही उसने अचानक आंख उठाकर देखा, खुद दीन-दुनिया के मालिक शाहजहां खड़े उसकी करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को सांप डस गया। वह हतबुद्धि की तरह बादशाह का मुंह ताकने लगी। बादशाह ने कहा, "तू कौन है और यह क्या कर रही थी ?"

साकी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा, "जवाब दे !"

साकी ने धीमे स्वर में कहा, "जहांपनाह ! कनीज़ अगर कुछ जवाब न दे तो ?"

बादशाह सन्नाटे में आ गए—बांदी की इतनी हिम्मत !

उन्होंने फिर कहा, "मेरी बात का जवाब नहीं ? अच्छा, तुझे २० कोड़े लगाए जाएंगे।"

की ने अकंपित स्वर में कहा, "मैं मर्द हूं।"
दशाह की आंखों में सरसों फूल उठी। उन्होंने अग्निमय नेत्रों
मा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह
भरा यौवन खुला पड़ा था। उनके मुंह से निकला—उफ
र! और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया।
उन्होंने कहा, "दोज़ख के कुत्ते! तेरी यह मज़ाल!"
फिर कठोर स्वर से पुकारा, "मादूम!"
एक भयंकर रूपवाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब
खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया, "इस मर्दूद को तहखाने में
दे, ताकि बिना खाए-पिए मर जाए।"
मादूम ने अपने कर्कश हाथों में युवक का हाथ पकड़ा और ले
। थोड़ी देर बाद दोनों एक लोहे के मजबूत दरवाज़े के पास
खड़े हुए। तातारी बांदी ने चाबी निकाल दरवाज़ा खोला और
को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझ ऊपर
ही कांपती हुई नीचे धसकने लगी।

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंककर उठ बैठी।
सवारे, ओढ़नी ठीक की और चोली के बटन कसने को आईने
ामने जा खड़ी हुई। खिड़कियां बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा,
की! प्यारी साकी! बड़ी गर्मी है, ज़रा खिड़की तो खोल दे।
ोड़ी नींद ने तो आज गज़ब ढा दिया। शराब कुछ तेज़ थी।"
किसीने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने ज़रा ज़ोर से
ारा, '

ई। वह खुद खिड़की खोलने
। सलीमा ने विस्मय से मन
ा हुई?'
ो दो नंगी तलवार
ही उसने सिर झुका

?"

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह ने आगे होकर हा, "क्या लाई है ?"

बांदी ने दस्तबस्ता अर्ज की, "खुदावन्द ! सलीमा बीबी की र्जी है।"

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा, "उससे कह दे कि मर गए !" इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुंह र लिया।

बांदी सलीमा के पास लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर लीमा धरती में बैठ गई। उसने बांदी को बाहर जाने का हुक्म दया, और दरवाज़ा बन्द करके फूट-फूटकर रोई। घंटों बीत गए; दन छिपने लगा। सलीमा ने कहा—'हाय ! बादशाहों की बेगम ोना भी क्या बदनसीबी है ! इन्तज़ारी करते-करते आंखें फूट जाएं, मन्नतें करते-करते ज़बान घिस जाए, अदब करते-करते जिस्म टुकड़े-कड़े हो जाए, फिर भी इतनी-सी बात पर कि मैं ज़रा सो गई, नके आने पर जग न सकी, इतनी सज़ा ! इतनी बेइज़्ज़ती ! तब मैं गम क्या हुई ? ज़ीनत और बांदियां सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? इस इज़्ज़ती के बाद मुंह दिखाने लायक कहां रही ? अब तो मरना ही ीक है। अफ़सोस ! मैं किसी गरीब किसान की औरत क्यों न हुई !'

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व ोर दृढ़ प्रतिज्ञा के चिह्न उसके नेत्रों में छा गए। वह सांपिन की रह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक और खत लिखा :

"दुनिया के मालिक ! आपकी बीवी और कनीज़ होने की वजह मैं आपके हुक्म को मानकर मरती हूं। इतनी बेइज़्ज़ती पाकर एक लिका का मरना ही मुनासिब भी है। मगर इतने बड़े बादशाह को रतों को इस कदर नाचीज़ तो न समझना चाहिए कि एक अदना-ी बेवकूफ़ी की इतनी कड़ी सज़ा दी जाए। मेरा कुसूर सिर्फ़ इतना ी था कि मैं बेख़बर सो गई थी। ख़ैर, सिर्फ़ एक बार हुज़ूर को नने की ख़्वाहिश लेकर मरती हूं। मैं उस पाक परवरदिगार के पास ाकर अर्ज़ करूंगी कि वह मेरे गौहर को सलामत रखे।

—सलीमा"

खत को इत्र से सुवासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया कि किसी की उस पर फौरन ही नजर पड़ जाए। इसके बाद उसने जवाहरात की पेटी में से एक बहुमूल्य अंगूठी निकाली और कुछ देर तक आंखें गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही, फिर उसे चाट गई।

बादशाह शाम की हवाखोरी को नजरबाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए और चिट्ठी पेश करके अर्ज की, "हुजूर, गजब हो गया ! सलीमा बीबी ने जहर खा लिया है और वे मर रही हैं !"

क्षण-भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए सलीमा के महल पहुंचे। प्यारी दुलहिन सलीमा जमीन में पड़ी है। आंखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से न रहा गया। उन्होंने घबराकर कहा, "हकीम को बुलाओ।" कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा, और धीमे स्वर में कहा, "जहे-किस्मत !"

बादशाह ने नजदीक बैठकर कहा, "सलीमा ! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाजिम था ?"

सलीमा ने कष्ट से कहा, "हुजूर ! मेरा कुसूर बहुत मामूली था।"

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा, "बदनसीब ! शाही जनानखाने में मर्द को भेस बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है ? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आंखोंदेखी को भी झूठ मान लूं?

तड़पकर सलीमा ने कहा, "क्या ?"

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा, "सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, वह जवान कौन था ?"

सलीमा ने अचकचाकर पूछा, "कौन जवान ?"

बादशाह ने गुस्से से कहा, "जिसे तुमने साकी बनाकर पास रखा था।"

सलीमा ने घबराकर कहा, "हैं ! क्या वह मर्द है ?"

बादशाह बोले, "तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं ?"

सलीमा के मुह से निकला, "या खुदा !"

फिर उसके नेत्रों से आसू बहने लगे। वह सब समझ गई। कुछ देर बाद बोली, "खाविंद ! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं; इस कुसूर की तो यही सजा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ फरमाई जाए। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूं, मुझे इस बात का कुछ भी पता नही है।"

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा, "तो प्यारी सलीमा ! तुम बेकुसूर ही चलीं !" बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा, "मालिक मेरे ! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मजा मिल गया। कहा-सुना माफ हो, और एक अर्ज लौंडी की मंजूर हो।"

बादशाह ने कहा, "जल्दी कहो सलीमा !"

सलीमा ने साहस से कहा, "उस जवान को माफ कर देना।"

इसके बाद सलीमा की आखों से आसू बह चले, और थोड़ी ही देर में वह ठंडी हो गई।

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा, और फिर बालक की तरह रोने लगे।

गजब के अंधेरे और गर्मी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक घोर चीत्कार करके किवाड़ खुले। प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहखाने में भर गया, "बदनसीब नौजवान ! क्या होश-हवास में है ?"

युवक ने तीव्र स्वर में पूछा, "कौन ?"

जवाब मिला, "बादशाह !"

युवक ने कुछ भी अदब किए बिना कहा, "यह जगह बादशाहों के लायक नही है। क्यों तशरीफ लाए हैं ?"

"तुम्हारी कैफियत नही सुनी थी, उसे सुनने आया हूं।"

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा, "सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिए कैफियत देता हूं, सुनिए: सलीमा जब बच्ची

थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी। पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा पर्दे में रहने लगी, फिर वह शहंशाह की बेगम हुई; मगर मैं उसे भूल न सका। पांच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अंत में भेस बदलकर बांदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुजारने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चांदनी, सुगंधित पुष्पराशि, शराब की उत्तेजना और एकांत ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आंचल से उसके मुख का पसीना पोंछा और मुंह चूम लिया। मैं इतना ही गुनाहगार हूं। सलीमा इसकी बाबत कुछ नहीं जानती।"

बादशाह कुछ देर चुप खड़े रहे। इसके बाद वे बिना ही दरवाजा बन्द किए धीरे-धीरे चले गए।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गए। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने, नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे बादशाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसीको पास आने का हुक्म नहीं है। जब आधी रात हो जाती है तो उस गंभीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्मभेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ-साफ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है :

"दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी ?"

प्यार

की रात, घना अन्धकार। दामोदर नद का भीमा-
कार। समस्त प्रकृति जड़, स्तब्ध। समीप ही एक राजो-
द्यान विटप-लता-वेष्टित। अन्धकार में अन्धकार। मेंढक,
और दूसरे जीवों का तीव्र स्वर दामोदर की उत्तुंग तरंग-राशि
र से मिला हुआ। जब-तब किसी विहग का करुण क्रन्दन।
घता का आर्त्तनाद। उद्यान की मध्यभूमि में एक धवल प्रासाद,
ार पर मुस्कान बिखेरता हुआ, गगनचुम्बी किन्तु स्तब्ध।
निस्पन्द अर्धरात्रि।

क्ष में दीप [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
और इस बेला चञ्चल हवा के झोंके से दीप बुझने को हो
ता। उसकी लौ कांपती और फिर स्थिर हो जाती। कुछ पोटलियां
ी थीं, कुछ खुली पड़ी थीं। उनमें से किसी में हीरे-मोती, लाल-माणिक
की मुहरें, किसी में जड़ाऊ गहने, किसी में बहुमूल्य वस्त्र-
पोशाकें। सभी कुछ सामने बिखरा पड़ा था।
है—बूढ़ा इसी असमञ्जस में बैठी, थरथराती
पोटलों को बांध और खोल रही थी।
ने निःशब्द कक्ष में प्रवेश किया।
थी। लम्बा छरहरा कद, गौर-
श्वेत साफा, लौ के चमकते

गा। मैं ही ले चलूंगी।"

'नहीं मरजाना, यह सब दामोदर के पानी में फेंक दे।"

"बादी ने खीजकर कहा, "यह सब दामोदर के पानी में फेंक गी तो खाओगी क्या?"

"हाथी से चींटी तक को जो देता है, वही दाता इस यतीम बेबा ो भी देगा। न होगा तो राह-बाट में कहीं भूख से मर जाऊंगी। तें और सियार जिस्म को ठिकाने लगा देंगे।"

"तौबा, तौबा! यह क्या कलमा कहा बीबी!"

"तेरा इन कंकड़-पत्थरों पर मोह है, तो तू इन्हें ले जा। तुझे ी है।"

"खूब छुट्टी दी बीबी! छाती पर बोझ लेकर दामोदर के पानी डूब मरने में इस बदबख्त बुढ़िया को कुछ तकलीफ न होगी।"

"नाराज़ हो गई मरजाना? राह में चोर-डाकुओं का क्या डर ीं है? हम औरत ज़ात, किस-किस मुसीबत का सामना करेंगी, ! भी तो सोच!"

मरजाना की आंखों से टप से दो बूंद आंसू टपक पड़े।

रमणी ने देखा, न देखा। उसने कहा, "अब देर न कर। तीन र रात बीत चुकी। दिन निकलने पर निकलना न हो सकेगा।"

मरजाना ने झटपट सब हीरे-जवाहर कूड़े के ढेर की तरह एक ठरी में बांधे और उसे बगल में दबाकर उठ खड़ी हुई। फिर एक र्घ निःश्वास फेंककर कहा, "चलो बीबी! लेकिन बच्ची सो रही । तुम यह गठरी लो। मैं बच्ची को लिए लेती हूं।"

"नहीं, बच्ची को मैं ही ले चलती हूं।"

युवती ने बच्ची को गोद में ले लिया, काले वस्त्र से शरीर को च्छी तरह लपेटा; एक नज़र उस भव्य अट्टालिका पर डाली; एक हरी सांस छोड़ी और चल दी। पीछे-पीछे मरजाना थी।

दोनों असहाय स्त्रियां प्रासाद की सीढ़ियां उतर, निविड़ अन्धकार । पौरी, द्वार, आंगन, दालान पार कर, बाग की रविशों पर चलती ई नदी-तीर की ओर बढ़ चली। सामने दामोदर का विशाल विस्तार । हवा चोर की तरह चल रही है। हवा के एक झोंके ने बाला का

नत्र उ

म्रातों

पौ

लग रा"

"

किनार

रहा है

"

"वगे

"न-नान

नहीं लि

"? "

तमाम यतीम

"धार ज

बिगड़ेगा। फिर

"मै से मर

बिगाड़-"

तो होगा ी-काल

भय माला

क्या है

का आने

देखकर क पद

लिया। अंधेरे

पास ागे थ

उच्च सैनि

पर शस्त्र से वि

जो कहा

है ?"

इधर

ही स्वर में

उसने अपने साथी को मशाल जलाने को कहा। साथी के एक हाथ में नंगी तलवार थी और दूसरे में मशाल। तलवार म्यान में करके उसने मशाल जला दी। मशाल के पीछे, कांपते प्रकाश में उस व्यक्ति ने देखा—दो स्त्रियां हैं। आगे एक अनिन्द्य सुन्दरी बाला है।

वह दो कदम आगे बढ आया।

बाला ने जलद-गम्भीर स्वर में कहा, "तुम लोग कौन हो ? और किसके हुक्म से तुमने हमारे बाग में घुस आने की जुर्रत की ?"

"मुआफ कीजिए ! मैं आज्ञाकारी सेवक हूं।"

"किसके ?"

"नूरुद्दीन गाजी मुहम्मद जहांगीर शहनशाहे-हिन्द का।"

"लेकिन यह तो शहनशाहे-हिन्द का दौलतखाना नहीं है।"

"जी, जानता हूं।"

"तुम क्या मुझे पहचानते हो ?"

"पहचानता हूं।"

"तुम्हारा रुतबा क्या है ?"

"मैं शाही सेना का एक सिपहसालार हूं।"

"तो हजरत बादशाह ने तुम्हें मेरा घर-बार लूटने के लिए भेजा है ?"

"जी नहीं, बेअदबी मुआफ हो ! हम लोग आपको बाइज्जत आगरा ले जाने के लिए आए हैं।"

"तुम्हारे साथ फौज कितनी है ?"

"पांच हजार सवार।"

"एक बेबस बेवा को कैद करने के लिए शहनशाहे-हिन्द ने इतनी बड़ी फौज भेजी है ? यह तो शहनशाह की शान के खिलाफ है।"

"बेअदबी माफ हो ! कैद करने के लिए नहीं। शहनशाहे-हिन्द का हुक्म है कि आपको बाइज्जत आगरा ले जाया जाए।"

"लेकिन तुम तो चोर की तरह रात को मेरे महल में घुसे हो। क्या यह शर्म की बात नहीं ? तुम शाही सेनापति हो, फिर भी···"

"गुलाम हुक्म का बन्दा है। इसमें हमारा कुसूर नहीं है।"

"खैर, तो तुम मेरे साथ में कैसा सलूक किया चाहते हो ? तुमने

दवत...''

! बादशाह का हुक्म है कि आपके साथ हर तरह एह

ों का व्यवहार किया जाए।''

कहा था य ने महल क्यों घेरा ?''

''जी हा र मिली थी कि आप आज रात बर्दवान छोड़ कर

मस्जिद के द्वा चली जातीं, तो मेरा सिर धड़ से उड़ा दिया जाता।''

''तो नाम नाम क्या है ?''

''मुझे ां।''

है। अगर आ री का रुतबा है !''

'तुम्हार री।''

''रहमत मेरी एक आरज़ू पूरी कर सकते हो ?''

''के हज हर हुक्म को बजा लाने का मुझे शाही हुक्म है।''

''तीनहज पास जो जर-जवाहर है, वह सब मैं तुम्हें देती हूं।

''क्या न दस हजार अशर्फियां और। तुम मुझे चली जाने दो।''

''आपके ह को क्या जवाब दूंगा ?''

''तो मेरे कि कैदी ने रास्ते में ज़हर खा लिया। इत्मीनान

इसके अलावा कभी यह सूरत दुनिया में न देखोगे।''

''बादशा हे-हिन्द के जांनिसार नौकर नमकहराम और दगाबाज

''कह देन

रखो, तुम फि ई शाही फरमान कहां है ?''

''शहनशा ने अंगरखे की जेब से निकालकर फरमान रमणी के

नही होने।'' ।। मशाल की रोशनी में उसने पढ़ा। लिखा था :

''खैर, दे ान की बेवा को बाइज्जत ले आओ।'

रहमतखां ढ़कर एक वक्र मुस्कान रमणी के होंठों पर खेल गई।

हाथ में दे दिय फरमान रहमतखां को वापस देते हुए कहा, ''यह तो

'शेर अफ तुम्हारे नाम है। जब तक मेरे नाम फरमान नहीं

फरमान रा नहीं जाऊंगी।''

उसने घृणा से हुक्म मुझे बसरोचश्म मंजूर है। आप महल में तश-

मेरे नाम नहीं, मैं दूसरा शाही परवाना मंगाता हूं।''

आता, मैं आग ने झुककर सलाम किया और पीछे हट गया। रमणी

''आपका

रीफ ले जाएं।

सेनापति

क्षण-भर खड़ी रही, और फिर पीछे लौट पड़ी। पीछे-पीछे मरजाना थी।…

"मरजाना, बूढ़ा पूरा घाघ है। झुककर मीठी बातें बनाता है। मगर नजर किस कदर सख्त है कि महल तातारी बांदियों ने घेर रखा है। बाहर फौज का घेरा है। महल मे पक्षी भी पर नहीं मार सकता।"

रात बीत रही थी, आसमान मे बादल छाए थे। सुबह का धुंधला प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। उस प्रकाश मे सामने फैला हुआ दामोदर नद समुद्र-सा लग रहा था। बगीचे मे चम्पा, चमेली, रजनीगन्धा, जूही, नागकेसर के फूलों की महक भर रही थी। एकाध पक्षी जगकर कभी-कदा बोल उठता था।

मरजाना ने कहा, "अब क्या होगा बीबी ?"

"तुझे अभी जाना होगा।"

"कहां ?"

"काटवा।"

"काटवा किसलिए ?"

"महारानी कल्याणी के पास जा और उन्हें संग ले आ। ले, खर्च के लिए दस अशर्फी। एक पालकी ले आना।"

"लेकिन जाऊंगी कैसे ? महल तो हथियारबन्द तातारी बांदियों ने घेर रखा है।"

रमणी कुछ देर सोचती रही। फिर उसने दस्तक दी। एक तातारी बांदी हाथ बांधकर आ खड़ी हुई। उसने कोर्निश करके पूछा, "क्या हुक्म है बेगम साहिबा ?"

"रहमतखां सिपहसालार को अभी हाजिर कर।"

बांदी सिर झुकाकर चली गई।

थोड़ी देर में वृद्ध रहमतखां ने ड्योढ़ी पर आकर सलाम किया।

रमणी ने परदे की आड़ ही से कहा, "एक बांदी के साथ इस कदर अदब-आदाब की जरूरत नहीं। मैंने एक बात जानने के लिए तुम्हें तकलीफ दी है।"

गया था···बाइज्जत···"

"जी हां ! बादशाह का हुक्म है कि आपके साथ हर तरह एक मलिका के दर्जे का व्यवहार किया जाए।"

"तो तुमने महल क्यों घेरा ?"

"मुझे खबर मिली थी कि आप आज रात बर्दवान छोड़ रही हैं। अगर आप चली जातीं, तो मेरा सिर धड़ से उड़ा दिया जाता।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"रहमतखां।"

"कै हज़ारी का मनसब है ?"

"तीनहज़ारी।"

"क्या तुम मेरी एक आरज़ू पूरी कर सकते हो ?"

"आपके हर हुक्म को बजा लाने का मुझे शाही हुक्म है।"

"तो मेरे पास जो ज़र-जवाहर है, वह सब मैं तुम्हें देती हूं इसके अलावा दस हज़ार अशर्फियां और। तुम मुझे चली जाने दो।"

"बादशाह को क्या जवाब दूंगा ?"

"कह देना कि कैदी ने रास्ते में ज़हर खा लिया। इत्मीनान रखो, तुम फिर कभी यह सूरत दुनिया में न देखोगे।"

"शहनशाहे-हिन्द के जांनिसार नौकर नमकहराम और दगाबाज़ नहीं होते।"

"खैर, देखूं शाही फरमान कहां है ?"

रहमतखां ने अंगरखे की जेब से निकालकर फरमान रमणी के हाथ में दे दिया। मशाल की रोशनी में उसने पढ़ा। लिखा था :

'शेर अफगन की बेवा को बाइज्जत ले आओ।'

फरमान पढ़कर एक वक्र मुस्कान रमणी के होंठों पर खेल गई। उसने घृणा से फरमान रहमतखां को वापस देते हुए कहा, "यह तो मेरे नाम नहीं, तुम्हारे नाम है। जब तक मेरे नाम फरमान नहीं आता, मैं आगरा नहीं जाऊंगी।"

"आपका हुक्म मुझे बसरोचश्म मंजूर है। आप महल में तशरीफ ले जाएं। मैं दूसरा शाही परवाना मंगाता हूं।"

सेनापति ने झुककर सलाम किया और पीछे हट गया। रमणी

क्षण-भर खड़ी रही, और फिर पीछे लौट पड़ी। पीछे-पीछे मरजाना थी।····

"मरजाना, बूढ़ा पूरा घाघ है। झुककर मीठी बातें बनाता है। मगर नजर किस कदर सख्त है कि महल तातारी बांदियों ने घेर रखा है। बाहर फौज का घेरा है। महल में पक्षी भी पर नहीं मार सकता।"

रात बीत रही थी, आसमान में बादल छाए थे। सुबह का धुंधला प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। उस प्रकाश में सामने फैला हुआ दामोदर नद समुद्र-सा लग रहा था। बगीचे में चम्पा, चमेली, रजनीगन्धा, जूही, नागकेसर के फूलों की महक भर रही थी। एकाध पक्षी जगकर कभी-कदा बोल उठता था।

मरजाना ने कहा, "अब क्या होगा बीबी ?"

"तुझे अभी जाना होगा।"

"कहां ?"

"काटवा।"

"काटवा किसलिए ?"

"महारानी कल्याणी के पास जा और उन्हें संग ले आ। ले, खर्च लिए दस अशर्फी। एक पालकी ले आना।"

"लेकिन जाऊंगी कैसे ? महल तो हथियारबन्द तातारी बांदियों घेर रखा है।"

रमणी [illegible]

[illegible] पुकारा।

"रहमतखां सिपहसालार को अभी हाजिर कर।"

बांदी सिर झुकाकर चली गई।

थोड़ी देर में वृद्ध रहमतखां ने ड्योढ़ी पर आकर सलाम किया।

रमणी ने परदे की आड़ ही से कहा, "एक कैदी के साथ इस कदर अदब-आदाब की जरूरत नहीं। मैंने एक बात जानने के लिए तुम्हें तकलीफ दी है।"

लाल नववधू के मुख की सी लालिमा उत्पन्न कर रही थी। पक्षी अपने घोसलों को लौट रहे थे।

किसीने पुकारा, "मेहर !"

"आह, जो पुरुष अब दुनिया में नहीं रहा, वही तो इस तरह पुकारता था !"

मेहर ने मुह फेरकर देखा ; और वह दौड़कर रानी कल्याणी के गले लिपट गई।

कल्याणी ने व्यथाविरुद्ध स्वर में कहा, "इतना हो गया और मुझे खबर भी नहीं दी ! दो ही दिन में यह सूरत बन गई ! चेहरा स्याह हो गया ! बिखरे-रूखे बाल, सूखे होंठ, जैसे कमल पर बिजली गिरी हो ! बहिन, मुझे खबर क्यों नहीं दी ?"

मेहर के मुह में बात नहीं फूटी। कल्याणी के वक्ष पर सिर रखकर, वह फफक-फफककर रोने लगी।

"अब रोने-धोने से क्या होगा ! जो होना था, हो गया। अब आगे की बात सोचो।"

"जो हुआ वह शायद काफी न था। इसीसे उस संगदिल बादशाह ने मुझे गिरफ्तार करके आगरा ले जाने के लिए फौज भेजी है।" मेहर ने रुंधे कंठ से कहा।

"आगरा तो अब तुम्हें जाना ही होगा, और उपाय ही क्या है?"

"मैं रास्ते में जहर खा लूंगी, पर उस संगदिल बादशाह का मुह न देखूंगी !"

रानी कल्याणी सोचने लगी। उनका मुह भरे बादलों जैसा
[illegible] री किस्मत में शायद
[illegible]

"आप इस कदर बेरहम न बनें, महारानी ! मैंने बड़ी बहिन समझकर इस विपदा में आपको मशविरा करने के लिए बुलाया है।"

[illegible]

तुम शाहजादा सलीम की बीबी बनोगी, और आज हिन्दुस्तान की

"मैं आपका गुलाम हूं। हुक्म दीजिए।"

"मेरी बांदी एक खबर ला रही है। किसी सिपाही को उ साथ भेज दो। महल में मेरी एक सहेली आएगी। खबरदार, उस पालकी की जांच कोई न करे।"

"यह तो मुमकिन नहीं है बेगम साहिबा!"

रमणी की भौंहों में बल पड़ गए। उसने कहा, "क्या मुम किन नहीं है?"

"बगैर जांच-पड़ताल के कोई पालकी भीतर नहीं आ सकती।

"बादशाह ने क्या तुम्हें ऐसा भी हुक्म दिया है?"

"जी नहीं; लेकिन हिफाजत के ख्याल से हमें मजबूरन करना पड़ता है?"

"लेकिन तुमपर हमारे हर हुक्म की तामील लाजिम है। क तुम्हें बादशाह ने ऐसा हुक्म नहीं दिया है?"

"दिया है बेगम साहिबा!"

"तो मेरा हुक्म है कि जो सवारी आ रही है, उसकी जां पड़ताल न की जाए, और वह बाइज्जत हमारे पास आने दी जाए।

"सवारी कहां से आ रही है?"

"काटवा से।"

"काटवा से कौन आ रही हैं?"

"काटवा के किलेदार महाराज जगपतिसिंह की महारा कल्याणीदेवी। वे मेरी सहेली हैं। आड़े वक्त में उनसे सलाह-मशवि लेती हूं। आगरा की बावत में उनसे मशविरा करना चाहती हूं।"

"बहुत खूब! मैं खुद काटवा जाकर महारानी को साथ ले आ हूं। आप आराम फरमाएं।"

वृद्ध सेनापति दाढ़ी में मुस्कराता हुआ चला गया।

बाला ने एक दीर्घ निःश्वास खींचा।···

महल के झरोखे में खड़ी बाला अस्तंगत सूरज की शोभा निह रही थी। अमराई में आम के बड़े-बड़े वृक्ष हवा के झोंकों के सा झूम रहे थे। उनपर सूर्य की लाल किरणें पड़कर उनमें लज्जा

नववधू के मुख की सी लालिमा उत्पन्न कर रही थी। पक्षी
ोंसलों को लौट रहे थे।

सोने पुकारा, "मेहर !"

'आह, जो पुरुष अब दुनिया में नहीं रहा, वही तो इस तरह
ा था !"

हर ने मुह फेरकर देखा ; और वह दौडकर रानी कल्याणी
लिपट गई।

ल्याणी ने व्यथाविरुद्ध स्वर में कहा, "इतना हो गया और
खबर भी नहीं दी ! दो ही दिन में यह सूरत बन गई ! चेहरा
हो गया ! बिखरे-रूखे बाल, सूखे होंठ, जैसे कमल पर बिजली
हो ! बहिन, मुझे खबर क्यों नहीं दी ?"

मेहर के मुह से बात नहीं फूटी। कल्याणी के वक्ष पर सिर
र, वह फफक-फफककर रोने लगी।

"अब रोने-धोने से क्या होगा ! जो होना था, हो गया। अब
की बात सोचो।"

"आगरा तो अब तुम्हे जाना ही होगा, और उपाय ही क्या है?"

"मैं रास्ते में जहर खा लूगी, पर उस संगदिल बादशाह का
न देखूगी !"

रानी कल्याणी बोलने लगी। [illegible]

"आप इस कदर बेरहम न बनें, महारानी ! मैंने बड़ी बहिन समझकर इस विपदा में आपको मशविरा करने के लिए बुलाया है।"

"मेहर, मैं भाग्य में विश्वास करती हू। जो कुछ हुआ, सब भाग्य का खेल था। अब आगे जो भाग्य में है, उसे कौन मेट सकता है! तुम जानती हो कि जन्नतनशीन बादशाह अकबर यदि जिद न पकड़ते, तो तुम शाहजादा सलीम की बीबी बनतीं, और आज हिन्दुस्तान की

[illegible] रहो। लेकिन भाग्य बड़ा प्रबल है। उसने तुम्हारी अब फिर आगरा की अधिकारी होने का द्वार खोल दिया है। आगरा जाओ! बर्दवान का गुम्बद महल तुम्हारे रहने के नहीं है।"

"नहीं भाभीजान, मैं उस भगोड़े बादशाह की मर्जी का खिलौ नहीं बनूंगी। मेरे शौहर, बेकसूर शौहर के खून का दाग उसके दामन पर है।"

"मेहर, बंगाल से आगरा ले जाने के लिए फौज आई है। अब तु क्या कर सकती हो?"

"रास्ते में जहर खा लूंगी। मेरी मिट्टी ही आगरा पहुंचेगी!"

"छि, छि! तुम अपनी जिन्दगी को इतनी बेकार चीज समझती हो? मरने से तुम्हारा सब कुछ नष्ट हो जाएगा। और बादशाह का क्या बिगड़ेगा?... नहीं मेहर, तुम्हें एक बार बादशाह के सामने जाना ही चाहिए।"

"तो मैं उसकी छाती में लात मारकर कहूंगी कि तुम दीनों-दुनिया के बादशाह हो, लेकिन मैं तुमसे नफरत करती हूं। तुमने एक हंसती-खेलती दुनिया को बरबाद किया है—एक मासूम, बेगुनाह औरत को बेवा बनाया है।"

"मेहर, लात खाकर भी अगर बादशाह इन चरणों को चूम ले, और इनका सदा के लिए दास बन जाए तो?"

"ऐसी बात मत कहो बहिन।"

"तो बहिन..किस्मत के दरिया में अपनी जिन्दगी की किश्ती को छोड़ दो, और देखो कि वह कहां जाकर ठहरती है। पहले ही से कोई इरादा पक्का न करो। जब जैसा देखना, वैसा ही करना। तुम समझदार औरत हो।"

"तो आप क्या सलाह देती हैं?"

"आगरा जाओ और अवसर मिले तो हिन्दुस्तान की मलिका बनो और ऐसी हुकूमत करो कि हिन्दुस्तान तुम्हारी एक नजर से कांप उठे। बादशाह को अपने चरणों का गुलाम बनाओ। लेकिन अनादर ही पाओ, तो बेशक जहर पी लो।"

मेहर निरुत्तर हो गई। वह सिर नीचा करके सोचने लगी।

उसे अपनी छाती के निकट खींचकर रानी ने कहा, "मेहर, भारत की अधीश्वरी होकर तुम बहुतों का भला करोगी। इतिहास में तुम्हारा नाम अमर हो जाएगा। आशीर्वाद देती हू, जाओ, एक दिन तुम्हे सलाम करने मैं भी आगरा आऊगी।..."

आगरा के रगमहल मे रूप और धन-रत्न का अटूट भण्डार था। हीरा, मोती, माणिक, ककड़-पत्थरों की भाति समझे जाते थे। रूपवती नवयुवतियो का वहा जमघट था। देश-देश के एलची, सूबेदार, कारबरदार सालाना खिराज और नजराने के तौर पर अपने प्रदेशो की षोडशी अनिंद्य सुन्दरी कुमारियो को बादशाह के हरम मे भेजते रहते थे। उन्हें नाचने, गाने, सेवा करने और कसीदाकारी तथा चित्रकारी के फन मे निपुण किया जाता था, और तब उन्हे शाही खिदमत मे ले लिया जाता था। जिन लड़कियो को शाही खिदमत करने का सौभाग्य प्राप्त होता था, उनकी किस्मत खुल जाती थी। उनका परिवार सोने और हीरे-मोतियो से लद जाता था। लेकिन हरम से बाहर कदम रखने का उन्हे हुक्म न था। बाहरी हवा मे सांस लेना उनके लिए निषिद्ध था। हरम के भीतर के फूलों से भरी क्यारियों मे किलोल करती, फौवारो से अठखेलिया करती, इत्र मे स्नान करतीं, ऐश्वर्य और आनन्द की बहार लूटती। परन्तु हरम से बाहर निकलने पर खूंख्वार कुत्तो से वे नुचवा डाली जाती थी। यही सजा उनकी भी थी, जो किसी मर्द से बातें करती या हसती-बोलती देखी जाती थी। शाही हरम के सभी रग-ढग निराले थे, जहा अकेला बादशाह स्वतंत्र था, और सब लोग उसकी इच्छा के दास थे।

हरम का प्रत्येक कक्ष अतिशय भव्य होता था, और ऐश्वर्य और विलास की सामग्री से भरपूर रहता था। वहा बादशाह की चहेतियां यद्यपि बन्दिनी का जीवन व्यतीत करती थी, परन्तु वे बड़े ठाट-बाट से मलिकाओं की भांति रहती थी। हीरा-मोती उनके लिए ककड़-पत्थर के समान थे। लेकिन यह सब ठाट-बाट तभी तक रहता था,

जब तक उनका रूप-यौवन उभार पर होता था। रूप-यौवन के ढलान पर उनका जादू खत्म हो जाता था और उनकी कोई पूछ न रह जाती थी।

मेहरुन्निसा आगरा पहुंची, लेकिन बादशाह ने उससे मुलाकात नहीं की। उसने उसे हरम के एक साधारण कक्ष में रहने की आज्ञा दी और उसे अपनी माता की सेवा में नौकर रख दिया।

मेहर यद्यपि बादशाह से अप्रसन्न थी, पर उसे उससे ऐसे निष्ठुर व्यवहार की आशा न थी। उसके भावुक और गर्वीले हृदय को इससे ठेस पहुंची। उसे वे दिन भूले नहीं थे, जब बादशाह शाहजादा सलीम था और उसने उसके प्रति प्रेम में अंधे होकर कितनी विकलता प्रकट की थी! वह यह भी जानती थी कि उसीको प्राप्त करने के लिए बादशाह ने उसके प्यारे पति को मरवा डाला, और उसे सेना भेजकर आगरा बुलाया है। लेकिन आगरा आने पर उसके साथ ऐसा व्यवहार! उसकी ऐसा उपेक्षा!!

उसने बादशाह की आज्ञा मानकर राजमाता की सेविका होना स्वीकार कर लिया, पर महलवारी मुशाहरा लेने से इनकार कर दिया। उसके पास काफी धन था। उसमें से बहुत-सा उसने अपनी बांदियों को बांट दिया और स्वयं एक प्रतिष्ठित विधवा की भांति रहने लगी। वह अपने कक्ष की बारादरी में, जो राजमहल के बाग के सामने पड़ती थी, कीमती ईरानी कालीन पर जरदोजी की मसनद पर बैठकर हुक्का पीती। उसकी जवाहरात से जड़ी हुई सोने की मुनाल उसके सुन्दर मुख में लगी रहती।

उसने चुनकर सुन्दरी दासियां अपनी सेवा में रखी थीं। वे हर समय उसकी सेवा में उपस्थित रहतीं; पर वह बहुत कम उनसे सेवा लेती। वह उन्हें सखियों की भांति खूब ठाट से सजा-धजाकर रखती। यद्यपि वह स्वयं सादा वेश में रहती, पर अपनी दासियों को हीरे-मोती और जड़ाऊ पोशाक में सजाए रखती थी। वह अरब से लाए हुए बहुमूल्य इत्र-गुलाब का खास शौक रखती थी। उसके चारों तरफ का वातावरण निहायत खुशनुमा रहता था। परन्तु उसका हृदय उदास रहता। वह बहुधा फारसी के प्रसिद्ध कवि हाफिज का एक

[illegible] गुनगुनाया करती, जिसका भावार्थ यों था : पछवा हवा का एक झोंका वातावरण को सुरभित कर देगा और तब पुरानी दुनिया नई में बदल जाएगी—परन्तु उसके इस बन्दी-जीवन के दिन बीतते चले जा रहे थे; पर उसके निराश जीवन में न पछवा हवा का वह झोंका [illegible]

[illegible] को ऊंचे घराने की महिलाएं और अमीर-उमरा मेहरुन्निसा के हाथों से रेशम पर बने चित्रों और कसीदों के प्रशंसक हो गए। दिल्ली और आगरा की महिलाओं में उसने एक नये फैशन और सुरुचि का प्रसार किया।

जिस-जिससे उसका सम्पर्क हुआ, उसपर उसने उच्च चारित्र्य-सम्बन्धी प्रभाव डाला। परन्तु उसकी आशाएं मुर्झा रही थीं। वह चिड़चिड़ी हो गई थी और शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाती थी। वह सुखी नहीं थी। अपने बेबस बन्दी-जीवन को वह भार समझती थी। अपने जीवन और जीवन के ध्येय के सम्बन्ध में वह बहुधा विचार करती। वह समझती थी कि वह इस प्रकार अपने जीवन को नष्ट करने के लिए पैदा नहीं हुई है। उपेक्षिता थी, परन्तु वह अपनी आत्मा के प्रेम और अहं के दर्प से परिपूर्ण थी।

अचानक उसने सुना कि हरम में एक ऐसी औरत आई है, जो भविष्यवाणी करती है और मनुष्य के भाग्य के रहस्यों को बताती है। उसने उसे बुलाया।

[illegible]

[illegible] अपने दोनों दुबले-पतले हाथ ऊपर उठाए और दोनों हाथों की उंगलियों को परस्पर उमेठते हुए विक्षिप्त-सी मुद्रा में बड़बड़ाते शब्द कहने आरम्भ किए। वे शब्द प्रभावशाली थे।

मेहरुन्निसा ने कुछ-कुछ भीतमुद्रा में कहा, "बड़ी बी, तुम्हारी

इन बातों का मतलब क्या है ? मैं अपने भाग्य और भावी जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहती हूं । क्या तुम मुझे इस सम्बन्ध में कुछ बता सकती हो ? यदि नहीं बता सकती, तो यह लो और यहां से चली जाओ ।" यह कहकर उसने उसके हाथ पर सोने की एक मुहर रख दी ।

चमचमाती मुहर को हथेली पर देखकर वृद्धा की आंखों में चमक आ गई । उसने कहा, "ऐ नेकबख्त, तू रेगिस्तान में पैदा हुई लेकिन तेरी मौत तख्त पर होगी । बचपन में जिसे भूखा रहना पड़ा, जवानी में वह दुनिया को रोटी देगी । भरोसा रख, और इस दूसरी हथेली पर विश्वास का सबूत दे ।" और उसने दूसरी हथेली फैला दी ।

मेहरुन्निसा ने कांपते हाथ से एक और मुहर उसकी दूसरी हथेली पर रख दी । वृद्धा पागलों की भांति हंसती और बड़बड़ाती चली गई ।…

मेहरुन्निसा भविष्यवाणी जैसी बातों को यद्यपि संदिग्ध मानती थी, फिर भी कहीं उसके अन्तस्तल में इनपर विश्वास भी था । बुढ़िया की अटपटी भविष्यवाणी सुनकर उसका कलेजा उछलने लगा। उसके मन में निराशा और अवसाद का जो अन्धकार बढ़ता चला आ रहा था, वह जैसे छिन्न-भिन्न होने लगा । एक अज्ञात आशा वृद्धा की अटपटी बातों से पल्लवित हो उठी । वह महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री थी, और उसके मन में हुकूमत की लालसा थी । एक शहनशाह से उसके मानसिक दांव-पेंच चल रहे थे । वह शक्ति-भर अपनी प्रतिष्ठा-वृद्धि का कोई अवसर न चूकती थी । वह जानती थी कि उसके अप्रतिम सौन्दर्य, सुरुचि और उच्च चरित्र की चर्चा हरम में दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी ।

इसी तरह दिन बीतते गए । इसी बीच एक असाधारण घटना घटी । एकाएक यह अफवाह फैल गई कि एक अत्युच्च अमीर उससे प्रेम करता है, और उसने उससे विवाह का प्रस्ताव किया है, जिसे मेहर ने स्वीकार कर लिया है । एक दिन वह अधीर, उतावला प्रेमी

सके कक्ष में बिना उसकी अनुमति के आ पहुंचा, और अत्यन्त नग्न ौर बेतुके ढंग से अपना प्रेम प्रकट करने लगा। मेहर ने उसे तुरन्त ाहर चले जाने का आदेश दिया। पर वह वासना का पुतला, उसके ादेश की परवाह न करके, उसे जबरदस्ती आलिंगन करने को बढ़ा। ेहर ने सिंहनी की भांति उछलकर अपनी कटार मूठ तक उसकी ाती में भोंक दी। आक्रमणकारी खून से लथपथ होकर फर्श पर छटपटाने लगा। आग की तरह यह खबर हरम में फैल गई।…

पूर्वस्मृतियां दोनों तरफ हृदयों को आन्दोलित कर रही थीं। बादशाह जब युवराज थे और मेहरुन्निसा नवयुवती थी, तभी दोनों का प्रथम साक्षात्कार हुआ था। उन क्षणों की झांकियां मधुर स्वप्न की भांति दोनों की आंखों में छा जाती थीं।

उस समय सलीम की उम्र छब्बीस बरस की थी। उसे युवराज का पद मिल चुका था। एक दिन गयासबेग उसे सादर आमन्त्रित कर अपने घर ले गया। युवराज के स्वागत-सत्कार में बहुत-से अमीर-उमरा आए, नाच-गाने हुए, मनोरंजन की अनेक व्यवस्थाएं की गईं, शानदार दावत हुई। जब जश्न खत्म हो गया और बाहरी मेहमान विदा हो गए, तो एकान्त कक्ष में शाहजादा को ले जाकर बिठाया गया। शराब के जाम पेश किए गए और रस्म के मुताबिक घर की महिलाएं शाहजादे के सामने सलाम करने को हाजिर हुईं। उस समय मेहरुन्निसा की उम्र केवल चौदह वर्ष की थी। उसने भी नीची आंखें किए, उठकर शाहजादे के सामने आकर कोर्निश की। सुर्ख सफेद रंग, ताजा कश्मीरी सेब के समान मुख, उज्ज्वल हीरे के समान दमकती आंखें, अर्द्ध-विकसित यौवन, फूलों के ढेर के समान शरीर-सम्पत्ति, सांचे में ढला एक-एक अंग, तिसपर लज्जा, भावुकता, सुकुमारता, भोली अल्हड़ता। सलीम ने देखा, तो आपा खो दिया। वह उसे अपलक देखता ही रह गया। उसने गाया, तो वह मस्ती के आलम में आ गया। उसने नृत्य किया, तो उसे अपने आसन पर बैठे रहना दूभर हो गया। शाहजादे की जलती हुई नजरें जब उस मुग्धा पर पड़ रही थीं, अकस्मात् ही उसका दुपट्टा हवा के एक झोंके से उड़ गया और

सलीम की आंखों में सौन्दर्य के जादू का समुद्र लहरा उठा। उस समय वह खामोश बैठा रहा।

चिराग जल गए। शराब के प्याले पेश किए जा रहे थे और वह चुपचाप पीता जा रहा था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे उसकी रगों में खून नहीं, पिघला हुआ शीशा बह रहा हो।

वह प्रेम का घाव खाकर लौटा। खाना, पीना, सोना उसके लिए दूभर हो गया। वह ठण्डी सांसें लेता और बेचैनी से करवटें बदलता रहता। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे! वह इतनी बड़ी बादशाहत का उत्तराधिकारी था, पर इस समय वह एक दीन-हीन, आकुल-व्याकुल प्रेमी था।

बादशाह अकबर से भी शाहजादे की यह दशा छिपी न रही। वह एक दूरदर्शी बादशाह ही न था, नई जातीयता और नई भावनाओं को जन्म देने की आकांक्षा भी रखता था। भारत में हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त जीवन का महत्त्व उसने समझ लिया था। सात सौ वर्ष से चले आते हुए धर्म-विग्रह को उसने त्यागकर हिन्दुओं के सामने मैत्री का हाथ बढ़ाया था। वह चाहता था कि हिन्दू-मुसलमानों में रोटी-बेटी के सम्बन्ध जारी हों और दोनों जातियां एक हो जाएं। इसीलिए उसने सलीम का ब्याह एक राजपूत राजकुमारी से किया था। वह नहीं चाहता था कि शाहजादे की इस नवीन उम्र में ही राजपूत बाला के प्रेम पर डाका पड़े। उसने राजपूत बाला को सलीम की प्रधान बेगम बना दिया था, और तय किया था कि उसीका पुत्र बादशाह होगा। उसका दृष्टिकोण शुद्ध राजनीतिक था। उसे सलीम के प्रेम को जानकर चिन्ता हुई। उसने तत्काल शेर अफगन के साथ मेहरुन्निसा की निस्बत पक्की करा दी।

यह खबर सलीम के लिए मौत से बढ़कर थी। उसने पिता के कदमों में गिरकर निवेदन किया कि वह मेहर की शादी उससे करा दे। सलीम ने कहा, "बिना मेहर के मैं जिन्दा न रहूंगा।" सलीम अकबर की बड़ी साध का बेटा था। फिर भी बादशाह ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। उसने अपने वज़ीर अबुलफजल से सलाह ली। मेहरुन्निसा का निकाह शेर अफगन के साथ कर दिया गया और शेर अफगन को

बर्दवान का हाकिमे-आला बनाकर बंगाल भेज दिया गया।

सलीम छटपटाकर रह गया। उसी क्षण से वह अपने प्रतिद्वन्द्वी का जानी दुश्मन बन गया। अपने पिता बादशाह अकबर के प्रति भी [illegible]
[illegible]
[illegible]
समय सलीम की उम्र तेंतीस बरस की थी।

अकबर का साम्राज्य अब सुसंगठित हो चुका था और साम्राज्य की वार्षिक आय साढ़े सत्रह करोड़ रुपयों के लगभग थी। जिस अबुल-फ़ज़ल ने अकबर को मेहर की शादी शेर अफ़गन से करने की सलाह

[illegible]

[illegible] सन पर आरोहण किया, उसकी उम्र छत्तीस बरस की थी। वह एक सुन्दर, छरहरे बदन और लम्बे कद का आकर्षक व्यक्ति था। रंग उसका गोरा था। वह गलमुच्छें रखता था, और आंखें उसकी तेज और चमकदार थीं। शिष्टाचार वह खूब जानता था। स्वभाव का सरल और बातचीत में पटु था। दरबार के सब लोगों को उसने अपने व्यवहार से प्रसन्न कर लिया। अपने विरोधियों को भी उसने क्षमा कर दिया। उसकी न्यायप्रियता की शीघ्र ही लोगों पर धाक बैठ गई।

जहांगीर को अब सब कुछ मिल गया था, पर मेहरुन्निसा का कांटा उसके कलेजे में अब भी कसक रहा था। मेहरुन्निसा को वह नहीं भूल सका था। उसके रंगमहल में अनगिनत सुन्दरियां थीं, पर

यह चौदह बरस की अल्हड़ मेहर, जिसका अकस्मात् ही दुपट्टा उड़ गया था और क्षण-भर के लिए जिसके यौवन का सम्पूर्ण खजाना प्रकट हो गया था, उसके दिल से दूर नहीं हो सकी थी।

शेर अफगन अब बर्दवान में एक बहुत बड़े बाग में आलीशान महल बनवाकर रह रहा था। वह अपनी प्रिय पत्नी के दुर्लभ, अछूते यौवन का आनन्द दामोदर नद की तरंगित धाराओं के समान ले रहा था। दोनों सुखी थे, प्रसन्न थे। मेहर के हृदय में भी सलीम की वह नजर चुभ गई थी। वह कभी-कभी सलीम की उस चितवन के सम्बन्ध में सोचा करती थी। उसे यह भी ज्ञात था कि सलीम उससे विवाह करना चाहता था। वह कभी-कभी यह भी सोचती थी कि यदि ऐसा होता, तो वह एक दिन हिन्दुस्तान की मलिका बन जाती। परन्तु ये सब बातें धुंधली होती जा रही थीं। शेर अफगन का प्यार उसे झकझोर रहा था। वह अपने बर्दवान के महल में आनन्दित थी। अपने सौभाग्य पर उसे गर्व था। इसी समय उसे एक पुत्री की उपलब्धि हुई।

इस समय बंगाल राजविद्रोह का अड्डा बना हुआ था। बंगाल का सूबेदार इस समय कुतुबुद्दीन था। उसके पास एक गुप्त शाही फरमान आया। कुतुबुद्दीन ने शेर अफगन को अपने दरबार में बुलाकर कहा, "तुमपर राजविद्रोह का अभियोग है।" उसने शेर अफगन के साथ कुछ ऐसा अशिष्ट व्यवहार किया कि शेर अफगन क्रुद्ध हो उठा। दोनों आपस में तलवार लेकर जुट गए, और दोनों ही लड़कर मर गए। इसके बाद ही शेर अफगन की बेवा मेहरुन्निसा को आगरा ले जाने के लिए शाही फौज आई, और उसे जाना ही पड़ा।

तीन वरस वीत गए। इस वीच मानसिक द्वन्द्व ने दोनों को आन्दोलित किया। वादशाह वड़ी सावधानी से उसकी गतिविधि को देखता और अप्रकट रूप से इस वात की व्यवस्था रखता कि उसे कोई कष्ट न होने पाए। सच पूछा जाए तो मेहरुन्निसा के कसीदों और चित्रों की इतनी प्रशंसा तथा अच्छे दामों में उनकी विक्री होना भी वादशाह के संकेतों पर ही था।

मेहर की दुर्दमनीय महत्त्वाकांक्षा कह रही थी कि वह इस प्रकार

ही भविष्य-

वह अमीर-

लो घटना हुई। बादशाह के कानों तक इसकी खबर [illegible]

आनेवाले की प्रतीक्षा कर रही हो। परन्तु वह आनेवाला कौन
, जिसके पैरों की आहट के लिए उसके कान चौकन्ने हो रहे थे?…

ईद का दिन था, संध्या का समय। रंगमहल में जश्न मनाया जा हा था। मेहरुन्निसा अपने कक्ष में कालीन पर बैठी, अस्तंगत सूर्य की जरबाग में पड़ती आड़ी-तिरछी सुनहरी किरणों को निहार रही थी। नकी बांदियां लक-दक पोशाक पहने उसके आसपास खड़ी थीं।

अचानक बांदियों के मुंह से चीख निकल गई। मेहर समझ गई क कक्ष में कोई आया है। उसने आंख उठाकर देखा—दीनो-दुनिया के मालिक शहनशाह जहांगीर थे।

बादशाह उसके रूप को देखकर धक् रह गया। अब वह उसकी रानी परिचिता अस्फुट कली न थी। उसका यौवन भरपूर निखरा आ था। वह ऐसा प्रखर था कि उसकी चकाचौंध से आंखें झंप जाती थीं। मेहर ने उस समय कोई खास पोशाक नहीं पहन रखी थी। वह मस्लिन की सफेद सादा पोशाक पहने बैठी थी, किन्तु उसमें से छनकर भी उसका रूप अपनी अद्भुत छटा दिखा रहा था। कदाचित् रत्नजटित पोशाक में वह इतनी सुन्दर न प्रतीत होती।

बादशाह को देखते ही मेहर हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और उसने अपनी आंखें जमीन में गड़ा दीं। लाज की ललाई उसके सुन्दर मुंह पर फैल गई।

,बादशाह दो कदम आगे बढ़े। उन्होंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा "स्त्रियों में सूर्य के समान मेहर, इस तरह बांदियों की पोशाक में क्यों है?"

चारों ओर रंग-बिरंगी जड़ाऊ पोशाकें पहने बांदियां खड़ी थीं। मेहर ने छाती पर हाथ रखकर और सिर झुकाकर जवाब दिया,

"बांदियां अपनी मर्ज़ी के अनुकूल रहती हैं, जिनकी सेवा में वे नियुक्त होती हैं। ये सब मेरी बांदियां हैं, और अपनी हैसियत के अनुसार मैं इन्हें सजाती पहनाती हूं। लेकिन शहंशाह, मैं जिसकी बांदी हूं, वे मुझे जिस तरह रखना चाहते हैं, मैं उसी तरह रहने को मजबूर हूं!"

"मेहर, शहंशाहे-हिन्द, तेरे रूप का पुजारी यह जहांगीर तेरे कदमों पर अपने प्रेम के फूल चढ़ाता है। क्या तुझे जहांगीर की सुलताना बनने में कोई उज्र है?"

मेहर ने नज़र उठाकर क्षण-भर बादशाह की ओर देखा, और फिर नज़र नीची करके कहा, "ऐ शहंशाह, आपके जामे के बटन में जो लाल लगा हुआ है, उससे ऐसा लगता है कि जैसे किसी पीड़ित का खून शहंशाह से इन्साफ चाहता है!"

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़ा उसे निहारता रहा, फिर उसने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, "ऐ शहंशाहे-हिन्द की सुलताना, अब से तू ही इन्साफ की तराजू को संभाल। जहांगीर तो सिर्फ तेरी मुहब्बत का भिखारी है।"

और उसने उसे खींचकर हृदय से लगा लिया। मेहर ने बादशाह की छाती को आंसुओं से तर कर दिया।

दे खुदा की राह पर

मैं उसे बहुत दिनों से उसी स्थान पर बैठा देखा करता था। वह ामा मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे, एक कोने में बैठा रहता था। सके हाथ में एक पुरानी ऊनी टोपी थी, उसीको वह भिक्षापात्र की ाति काम में लाता था। उसकी अवस्था सत्तर को पार कर गई थी, कर भी वह खूब मजबूत दिखाई पड़ता था। उसका कण्ठ-स्वर तेज और गम्भीर था। उसके चेहरे पर एकाध चेचक का दाग था।

ो नहीं देता था। लोग उसे बहुधा पैसे दे देते थे। पैसा टोपी में डालने पर उसने कभी किसीको आशीर्वाद नहीं दिया। परन्तु उसके चेहरे के भाव, जो निरन्तर अमिट रूप से बने रहते थे, देखकर अनायास ही मनुष्य को उसपर श्रद्धा हो जाती थी। सम्भव है, वह मन ही मन आशीर्वाद देता हो। बहुधा मैंने देखा था, लोग चुपके से उनके निकट जाते, पैसा उनकी टोपी में फेंकते और धीरे से खिसक जाते थे। वह तो अपनी अनवरत गति से 'दे खुदा की राह पर' की आवाज थोड़ी-थोड़ी देर बाद लगाता रहता था। घर से दफ्तर जाने का मेरा रास्ता जामा मस्जिद होकर ही था। जामा मस्जिद से मैं ट्राम पकड़ता था। ट्राम की प्रतीक्षा में कभी-कभी मुझे कुछ देर अटकना पड़ता था। वह सीढ़ियों के जिस नुक्कड़ पर बैठता था, वहां मैं ट्राम की प्रतीक्षा में खड़ा था। उस समय ट्राम आने तक मैं उसके एकरस और एक-सी भावभंगी से परिपूर्ण चेहरे को, आते-

आते-जाते पैसा भिखारियों की ओर उनकी पीड़ा-भावना को ध्यान में रखकर रहता था । मुझे इसका कुछ भान-सा हो गया था ।

मैंने उसे कभी कुछ नहीं दिया । एक पैसा देते हुए मुझे शर्म आती थी, अधिक देना भी खर्च लगती थी । सभी तो पैसा देते थे, मेरा अधिक देना दम्भ में सम्मिलित था । फिर, मेरी आमदनी भी इतनी सीमित थी कि मैं अधिक दे नहीं सकता था । और वह तो रोज का धन्धा ठहरा ।

वर्षा के दिन थे । दिन-भर पानी बरसा था । दफ्तर जाते वक्त देखा, वह एक कोने में पड़ा भीग रहा था । उस दिन उसे इस प्रकार निरीह भाव से भीगता देखकर मन पर आघात लगा । जी में ऐसा हुआ कि इसके लिए कुछ भी करना ही चाहिए । दफ्तर से जब मैं लौटा, तब वह अपने स्थान पर बैठा था । बदली खुल गई थी । उस दिन दफ्तर में थोड़ी देर हो गई थी । अंधेरा होने लगा था । मैं क्षण-भर रुककर उसकी ओर देखने लगा । वह अपने स्थान से उठा । उसने धीरे से, मानो वह आत्मनिवेदन कर रहा हो, कहा, "या खुदा, आज तो कुछ भी नहीं !"

उसने गंभीरता से अपनी दाढ़ी हिलाई, और अपनी लाठी टेकता हुआ चल दिया । मैं भी मन्त्रमुग्ध की भांति उसके पीछे हो लिया । मुझे उसके प्रति कौतूहल हो रहा था, क्योंकि उन सुपरिचित शब्दों के सिवा प्रथम बार ही मैंने उसके मुंह से निकले ये शब्द सुने थे ।

वह पतली और संकरी गलियों को पार करता हुआ धीरे-धीरे उसी लाठी की आंखों से राह टटोलता हुआ चला जा रहा था । पीछे-पीछे मैं था । बस्ती का शानदार भाग पीछे छूट गया था । अब वह गरीबों के टूटे-फूटे घरों के पास से गुजर रहा था । अन्त में एक खंडहर के समान घर के द्वार पर वह खड़ा हो गया । उसने कुण्डी खटखटाई और एक किशोरी बालिका ने आकर द्वार खोल दिया । यद्यपि मैं कुछ दूर था, फिर भी मैंने उस सुकोमल मूर्ति को देख लिया । उसे देखकर आंखें हरी हो गईं । उन आंखों ने भी, मालूम होता है, मुझे

लिया। यद्यपि उन दूध के समान स्वच्छ आंखों की दृष्टि पड़ते ही आंखें नीचे को झुक गई थी, फिर भी जैसे मेरा मूक निवेदन तक पहुंच चुका था।

वृद्ध को इस बात का कोई ज्ञान न था कि मैं उसका पीछा कर हूं। वे दोनों भीतर चले गए। दरवाजा बन्द हो गया। मैं फिर खड़ा कुछ सोचता रहा। यह अंधा-बूढ़ा भिखारी कौन है, और के साथ यह अनिन्द्य सुन्दरी बाला कौन है?

मेरी दृष्टि बन्द द्वार पर थी। द्वार खुला, वे ही आंखें एक बार लायमान होकर मेरे मुख पर अटक गईं। मैं चमत्कृत होकर देखने । उसने संकेत से मुझे निकट बुलाया और कहा, "आप बाबा से कुछ कहा चाहते हैं?"

मैंने बिना सोचे ही जवाब दिया, "हां, मैं उनसे कुछ बात किया हता हूं।"

"आप आइए।"

वह पीछे हट गई। मैं भीतर चला गया। मेरे भीतर आने पर सने द्वार बन्द कर लिया। भीतर से घर काफी बड़ा था। मकानियत कुछ न थी, मैदान काफी था। उसमें एक नीम का पेड़ भी था। र हर तरह साफ था। वृद्ध फकीर एक चटाई पर चुपचाप बैठा ।

बालिका ने कहा, "बाबा, ये आए हैं।"

बूढ़े ने दोनों हाथ फैलाकर कहा, "आइए मेरे मेहरबान, मुझसे लिका ने कहा कि आप मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे और दरवाजे पर ड़े थे। कहिए, मैं आपकी क्या खिदमत बजा ला सकता हूं? आइए, ठिए।"

बालिका ने एक चटाई का टुकड़ा लाकर डाल दिया था। मैं सी पर बैठ गया। मैंने कहा, "मैंने इस तरह आकर आपको जो कलीफ दी, उसके लिए माफी चाहता हूं। दरअसल मेरा कोई काम नहीं है। मगर मैं आपको अर्से से जामा मस्जिद पर देखता हूं। मैंने आपको कभी कुछ नहीं दिया। लेकिन आज उठती बार आपके मुंह से यह सुनकर कि 'आज कुछ भी नहीं' मैं अपने को काबू में न रख

सकता । एक पैसा आप जैसे मोहसिन
भी, ज्यादा की औकात नहीं । प
मगर हिम्मत न हुई कि आपको
चला आया ।"

बूढ़े ने सन्तोष से सारी बातें
अपने दृष्टिहीन नेत्र फैलाकर क
से आप जैसे भी फरिश्ता-खसलत
दें । आप शायद हिन्दू हैं ?"

"जी हां ।" मैंने धीरे से कहा
के हाथ पर रख दिया ।

रुपया हाथ से छूकर बूढ़े ने क
मैं अपने घर पर भीख नहीं लेता;
हूं मैं भीख लेने की जुर्रत कर सक
यहां तो मेरा फर्ज है कि मैं आपकी,
करूं ।"

यह कहकर बूढ़े ने रुपया मेरी
रजिया को पुकारकर कहा, "बेटी,
जरूर करनी चाहिए । ये हिन्दू हैं,
घर में हो तो जरा ला दो बेटी ।"

रजिया दो इलायची ले आई ।
बैठ गई । उसने अपनी सुनहरी हथेल
दो इलायचियां धरी थीं । उसने
लीजिए । घर में तश्तरी नहीं है ।"

'घर में तश्तरी नहीं है,' ये शब्
के आंखों में आंसू भर आए । उसने क
रंज क्यों बेटी ?"

उसने फिर आंसू पोंछकर कहा, "
कुबूल कीजिए, जिससे मेरी और मेरे

मैंने इलायचियां ले लीं । मैं सच
मच बूढ़े का कोई खानदान भी है ?

रुपया देने के कारण मैं लज्जित हो रहा था। मैंने कहा, "क्या

किसीसे मिलते हैं, न कोई हमसे मिलता है। आपने आज अचानक आकर इस बूढ़े, अन्धे, अपाहिज पर इतनी मेहरबानी की।" उसने झुककर मेरे दोनों हाथ चूम लिए।

रजिया ने आकर कहा, "बाबा, आज खाने का क्या होगा ?"

बूढ़े ने दो पैसे टेंट से निकालकर कहा, "सिर्फ ये ही हैं। एक पैसा तुम हस्ब-मामूल दरगाह पर खैरात दे आओ, और एक पैसे के चने ले आओ। आज उन्हींपर औकात बसर होगी।"

"रजिया के वालिद शायद नहीं है ?"

"नहीं !" बूढ़े का स्वर भर्रा गया। फिर उसने जरा खांसकर कहा, "उसे आज मरे चौदह साल हो गए।" बूढ़े की दृष्टिहीन आंखें मानो कुछ देखने लगीं। उनमें पानी छलछला आया। उसने एक बार आकाश की ओर उन आंखों को उठाया और फिर जमीन पर झुका दिया।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बूढ़े का जीवन गंभीर भेदों से परिपूर्ण है। परन्तु मुझे उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ। मैंने फिर कहा, "क्या मैं आपकी कोई खिदमत बजा ला सकता हूं ?"

"मेरी कोई खिदमत ही नहीं है, मेहरबान ! मैं खुदा का एक अदना खिदमतगार हूं।" उसके होठ कांपकर रह गए, मानो बलपूर्वक कुछ उसके मुख से निकल रहा था, वह उसने जबरदस्ती रोक लिया।

रजिया लौट आई और उसने भुने चने बूढ़े के सामने एक साफ कपड़े के टुकड़े पर फैला दिए। बूढ़े ने पानी मंगाकर वजू किया

सकता । एक पैसा आप जैसे भले बुजुर्गों के हाथ में रखते शर्म आती थी, ज्यादा की औकात नहीं । पर आज तो इरादा ही कर लिया, मगर हिम्मत न हुई कि आपको आवाज दूं । यही सोचते यहां तक चला आया ।"

बूढ़े ने ध्यान से मेरी बातें सुनीं । फिर उसने आकाश की ओर अपने [illegible] हाथ फैलाकर कहा, "शुक्र है अल्लाह का ! दुनिया में आप जैसे भी नेकदिल मेहरबान इन्सान हैं । खुदा आपको बरकत दे । आप शायद हिन्दू हैं ?"

"जी हां ।" मैंने धीरे से कहा, और एक रुपया निकालकर बूढ़े के हाथ पर धर दिया ।

रुपया हाथ में लेकर बूढ़े ने कहा, "खुदा आपको खुश रखे, मगर मैं अपने घर पर भीख नहीं लेता, खुदा के घर के कदमों पर बैठकर ही मैं भीख लेने की जुर्रत कर सकता हूं, वह भी खुदा की राह पर । यहां तो मेरा फर्ज है कि मैं आपकी, जहां तक हो, मेहमान-नवाजी करूं ।"

यह कहकर बूढ़े ने रुपया मेरी तरफ सरका दिया । इसके बाद रजिया को पुकारकर कहा, "बेटी, इन मेहरबान की कुछ तवाजा तो जरूर करनी चाहिए । ये हिन्दू हैं, और कुछ तो न खाएंगे, इलायची घर में हो तो जरा ला दो बेटी ।"

रजिया दो इलायची ले आई । वह घुटनों के बल मेरे सामने बैठ गई । उसने अपनी सुनहरी हथेली मेरे सामने फैला दी । उसपर दो इलायचियां धरी थीं । उसने मुस्कराकर कहा, इलायचियां लीजिए । घर में तश्तरी नहीं है ।"

'घर में तश्तरी नहीं है,' ये शब्द उसने कंपित कंठ से कहे । बूढ़े के आंखों में आंसू भर आए । उसने कहा, "तश्तरी नहीं है, तो उसका रंज क्यों बेटी ?"

उसने फिर आंसू पोंछकर कहा, "मेहरबानमन, बिटिया की नजर कुबूल कीजिए, जिससे मेरी और मेरे खानदान की इज्जत बढ़े !"

मैंने इलायचियां ले लीं । मैं सचमुच इस फेर में पड़ा, क्या सचमुच बूढ़े का कोई खानदान भी है ?

रुपया देने के कारण मैं लज्जित हो रहा था। मैंने कहा, "क्या मेहरबानी करके आप अपने कुछ हालात बतावेंगे, और कोई ऐसा काम भी, जिसे करके मैं आपकी कुछ खिदमत बजा लाऊं ?"

बूढ़े ने कहा, "पिछले नौ वर्षों में यह मैं आपसे आज बातें कर रहा हूं। रज़िया और मैं इतने दिनों से यहां अकेले रहते हैं। हम लोग न किसीसे मिलते हैं, न कोई हमसे मिलता है। आपने आज अचानक आकर इस बूढ़े, अन्धे, अपाहिज पर इतनी मेहरबानी की।" उसने झुककर मेरे दोनों हाथ चूम लिए।

रज़िया ने आकर कहा, "बाबा, आज खाने का क्या होगा ?"

बूढ़े ने दो पैसे टेंट से निकालकर कहा, "सिर्फ ये ही हैं। एक पैसा तुम हस्ब-मामूल दरगाह पर खैरात दे आओ, और एक पैसे के चने ले आओ। आज उन्हींपर औकात बसर होगी।"

रज़िया चली गई। मैं बूढ़े के दृष्टिहीन तेजवान मुंह को देखता रहा। फिर मैंने कहा, "रज़िया क्या आपकी बेटी है ?"

"नहीं, पोती है। इसकी मां इसे जनमते ही मर गई थी। इसे मैंने इन्हीं हाथों से पाला है।"

"रज़िया के वालिद शायद नहीं हैं ?"

"नहीं !" बूढ़े का स्वर भर्रा गया। फिर उसने ज़रा खांसकर कहा, "उसे आज मरे चौदह साल हो गए।" बूढ़े की दृष्टिहीन आंखें मानो कुछ देखने लगीं। उनमें पानी छलछला आया। उसने एक बार आकाश की ओर उन आंखों को उठाया और फिर ज़मीन पर झुका दिया।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बूढ़े का जीवन गंभीर भेदों से परिपूर्ण है। परन्तु मुझे उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ। मैंने फिर कहा, "क्या मैं आपकी कोई खिदमत बजा ला सकता हूं ?"

"मेरी कोई खिदमत ही नहीं है, मेहरबान ! मैं खुदा का एक अदना खिदमतगार हूं।" उसके होंठ कांपकर रह गए, मानो बलपूर्वक कुछ उसके मुंह से निकल रहा था, वह उसने ज़बरदस्ती रोक लिया।

रज़िया लौट आई और उसने भुने चने बूढ़े के सामने एक साफ कपड़े के टुकड़े पर फैला दिए। बूढ़े ने पानी मंगाकर वज़ू किया

नमाज़ पढ़ी, और फिर मेरे पास आकर कहा, "अगर एक मुट्ठी इसमें से आप कबूल फर्माएं, तो मैं समझूं कि अब भी मैं मेहमान-नवाज़ी करने के लायक हूं।" उसने चनों का रूमाल आगे बढ़ाया।

मैंने थोड़े चने मुट्ठी में लेकर कहा, "मेरे बुजुर्ग, इन्हें मैं नियामत समझता हूं।"

रजिया पास आ बैठी। हम तीनों ने चने खाए। इसके बाद मैं उठ खड़ा हुआ। बूढ़े ने खड़े होकर मुझे विदा किया। मेरा नाम पूछा और दुआ दी।

मैं रोज उसे यही भीख मांगते देखता, पर कभी कुछ देने तथा बोलने का साहस न करता। हां, बीच-बीच में मैं उसके घर घंटा दो घंटा जाकर बैठ आता था। उसका असली परिचय प्राप्त करने की मैंने बहुत चेष्टा की, पर न प्राप्त कर सका। अलबत्ता मुझे यह अवश्य मालूम हो गया कि बूढ़ा कोई बहुत ही बड़े खानदान का आदमी है। चार साल गुजर गए। हम लोगों में बहुत घनिष्ठता बढ़ गई थी। बूढ़े का यह नियम था कि वह तमाम भीख में से आधी मजार पर खैरात कर देता था। मजार उसीकी धर्मपत्नी की थी, जिसे उसने कभी अपने प्राणों से ज्यादा प्यार किया था, और अब पूजा करता था। आधी भीख वह अपने और रजिया के काम में लाता था।

एकाएक मैंने देखा, वह अब सीढ़ियों पर नहीं है। कई दिन बीत गए, आखिर मैं एक दिन उसके घर गया। देखा, बूढ़ा मृत्यु-शय्या पर पड़ा है; रजिया अकेली उसकी सेवा कर रही है। रजिया अब सत्रह साल की अप्रतिम सुन्दरी थी। परन्तु उसके सौन्दर्य में चमेली के समान माधुर्य था। वह पवित्रता, गौरव और गम्भीरता की केन्द्र-स्वरूप थी। उसके गुणों पर मैं मोहित था और मेरे मन में उसके प्रति आदर था। मेरी उम्र यद्यपि तीस वर्ष के लगभग ही थी, और मेरी पत्नी का जीवन के आरम्भ ही में देहान्त हो गया था, फिर भी उसके पति प्रेम की भावना से देखने का साहस मैं न कर सका था। वह मुझे 'बड़े भाई' कहकर पुकारती थी।

मुझे देखते ही उसने मुझसे कहा, "बड़े भाई, देखो, बाबा की

हालत हो गई है ! कई दिन से तुम्हें याद कर रहे है, पर मै इन्हे अकेली इतनी दूर तुम्हारे घर नही जा सकती थी।"

बूढ़े को होश हुआ तो रजिया ने उसके पास जाकर कहा, "बाबा, भाई आए हैं।"

आप मेरे मन की साध मिटा दीजिए, मुझे कुछ खिदमत करने का म दीजिए।"

बूढ़े ने कम्पित स्वर में कहा, "अच्छा, तुम मेरी ओर से रजिया एक काम कर दोगे ?"

र जाए, तब खोलना। इसमे जैसा लिखा है वैसा ही करना। जवान [illegible]

ओर कहा, "इसे बेचकर मेरी रजिया को आराम से रहने का बन्दोबस्त कर देना।"

बूढ़ा कुछ देर चुप रहा। वह अपने हृदय मे उबलते हुए तूफान को शान्त कर रहा था। कुछ ठहरकर उसने मुझे और रजिया को पास बुलाकर, दोनो के हाथ पकड़ अपनी छाती पर रखकर कहा, "मेरे मेहरबान, तुम हिन्दू हो और रजिया मुसलमान; मगर खुदा की नजर मे दोनो इन्सान हैं। मैं उम्मीद करता हू, तुम रजिया के लिए कभी बेफिक्र न होगे।"

। रज़िया ने आंखों में आंसू भरकर, मेरा हाथ पकड़कर कहा, "अब ाओगे कहां ?"

मैंने कहा, "रज़िया रानी, अब 'बड़े भाई' न कहोगी ?"

"नहीं।" रज़िया की आंखों में आंसू और होंठो में हंसी थी। ह लिपट गई।

मैंने कहा, "रज़िया 'बड़े भाई' का लिहाज़ करो। दर्द सिर्फ म्हारे ही दिल में नहीं, दूसरी जगह भी है; पर जो हो गया, सो ो गया।"

रज़िया ने बहुत समझाया, पर मैं न माना। मैंने कहा, "एक बार ड़े भाई' कह दो, तो जाऊं।"

रज़िया रोते-रोते धरती पर लोट गई। उसने कहा, "बड़े भाई, र यहीं रहो, जाते कहां हो ?"

"बहिन के घर कैसे रहूं ?"

रज़िया ने आंसू पोंछकर कहा, "तब जाओ, बड़े भाई।"

मैं घर चला आया। वहीं मेरी नौकरी थी। मेरे रोम-रोम में ज़िया थी, और रज़िया के रोम-रोम में 'बड़े भाई'।

आज सात साल इस घटना को हो गए हैं। रज़िया की अवस्था तीस वर्ष की हो गई है, मैं अड़तीस को पार कर चुका हूं। हम दोनों ने याह नहीं किया। मैं साल में एक बार रज़िया के घर जाता हूं। सकी सब आमदनी सार्वजनिक कामों में जाती है। सरकार से उसे गम की उपाधि मिली है।

अब मुझे पेंशन मिलती है। शाहज़ादे का वह चित्र गर्दन मेरी ांखों में रहता है।

ो रज़िया ने आखों मे आसू भरकर, मेरा हाथ पकड़कर कहा, "अब ओगे कहां ?"

मैंने कहा, "रज़िया रानी, अब 'बड़े भाई' न कहोगी ?"

"नहीं।" रज़िया की आखों मे आसू और होठों मे हंसी थी। ह लिपट गई।

मैंने कहा, "रज़िया 'बड़े भाई' का लिहाज करो। दर्द सिर्फ म्हारे ही दिल मे नहीं, दूसरी जगह भी है; पर जो हो गया, सो ो गया।"

रज़िया ने बहुत समझाया, पर मैं न माना। मैंने कहा, "एक बार बड़े भाई' कह दो, तो जाऊं।"

रज़िया रोते-रोते धरती पर लोट गई। उसने कहा, "बड़े भाई, फिर यहीं रहो, जाते कहा हो ?"

"बहिन के घर कैसे रहूं ?"

रज़िया ने आसू पोंछकर कहा, "तब जाओ, बड़े भाई।"

मैं घर चला आया। वही मेरी नौकरी थी। मेरे रोम-रोम में रज़िया थी, और रज़िया के रोम-रोम मे 'बड़े भाई'।

आज सात साल इस घटना को हो गए है। रज़िया की अवस्था ीस वर्ष की हो गई है, मैं अड़तीस को पार कर चुका हूं। हम दोनों ने ाह नहीं किया। मैं साल में एक बार रज़िया के घर जाता हूं।

"साहस?"

रामेश्वर ने घूरकर मित्र को देखा, "हां, साहस! इस दुरूह
या को ढोंग इतनी ही अधिक है।"

"अच्छी बात है। अब पाठ शुरू हो, मुझमें बहुत साहस है।"

"न भी होगा तो करना पड़ेगा। अच्छा सुनो—पहले यही बात
ननी चाहिए कि स्त्रियां पुरुषों से क्या चाहती हैं!"

"क्या चाहती हैं?" राजेन्द्र ने व्यग्र होकर पूछा।

योग के गहन सूत्र की तरह रामेश्वर ने कहा -

'पुरुषत्व।"

'मैं समझ गया।"

"मुझे भय है, तुम नहीं समझे। पुरुषत्व क्या वस्तु है, यह भी
म्हें समझने की जरूरत है।"

'क्या मैं पुरुषत्व को भी समझने की योग्यता नहीं रखता?"

"जो पुरुष पुरुषत्व को समझता है, वह कभी इन करुण कहानियों का दयनीय पात्र नहीं बनता।"

……

"किन्तु उसकी रूपरेखा क्या है?"

"केवल भावगम्य, और उसका प्रभाव अमोघ है। कोई स्त्री
के सम्मुख सीधी खड़ी रह ही नहीं सकती।"

'किन्तु वह अत्यन्त निष्ठुर और बड़ी गर्वीली है।'

"यह सम्भव ही नहीं है।"

"वह निरी पत्थर या इस्पात की बनी हुई है।"

"स्त्रियां इन वस्तुओं की बनाई ही नहीं जातीं।"

"तुम निश्चय ही उसके सम्मुख जाकर लज्जित और विफल
ओगे।"

"यह प्रकृति के सर्वथा विपरीत बात है।"

"तब मेरी-तुम्हारी बाजी रही। अगर तुम उसका गर्व-भंजन

कर सकी, उसे मन में सा
"देखता हूं, तुममें सा
किसी स्त्री को मन में लाने
न शोभा देनेवाली बात है.
समझाना पड़ेगा। मुझे तुम
मन को बड़ा भाया, मगर
पड़ेगा।"

"मुझे मंजूर है।"

दोनों मित्र विदा हुए।

उसका नाम था हीरा।
डेरेदार, ठिकाने की वेश्या
कायदे की वेश्यावृत्ति-व्यव
हिन्दी-उर्दू की भी कुछ शिक्षा
कमाकर जवानी से उतरी थी
तीन-चार यौवनों का सम्पूर्ण
बीच चौक में अपनी शान न
नवाबी ठाट से सजी थी। हीरा
थी, उसी रंग के जवाहरात से
रंगी मोटर में बैठती। नौकर
की होती थी। सन्ध्या के समय
आंखें सड़कों पर बिछी रहतीं
पहुंचने की हिम्मत न करते
वेश्या जरूर थी, अस्मतफरोश
कितनी दुर्लभ! कितनी नफीस
चाहे जब हीरा उछलने लगती

हीरा की उम्र का सतरहवां
के समान स्वच्छ और पानीदार
खून टपक पड़ेगा; होंठ और
अमृत और हलाहल विष का अ

था। जो एक बार देखता मर जाता था, और क्षण-भर में ही जी जाता था। धवल दन्त-पंक्ति की बहार उन रस-भरे उत्फुल्ल होंठों के अरुण वर्ण के बीच कैसी मोहक, कैसी प्यारी लगती थी ! गर्दन और वक्षस्थल मानो इटली के किसी कारीगर की संगमरमर पर अमर करामात थी। बढ़िया ईरानी कालीन पर बैठकर बिजली के दूधिया प्रकाश में, बिजली के पंखे के नीचे अपने महीन, सादे, उज्ज्वल परिधान में जब वह गाने बैठती थी, और उस हंस के समान शुभ्र कण्ठ से इन कव्वाली और गजलों के स्थान पर जब विशुद्ध स्वर, ताल, लय, मूर्छनायुक्त संगीत-लहरी का स्रोत बहता था, उस समय की बात क्या कही जाए ! उस उमड़ते रस-समुद्र में पहले वह स्वयं डूबती, तब अर्धनिमीलित नेत्र, कम्पित कण्ठ-स्वर, फड़कते होंठ और चंचलता से अस्त-व्यस्त बिखरती हुई देह किस मर्द को मर्द बना रहने दे सकती थी !

ऐसी ही वह अप्रतिम रूप-गुण-सम्पन्ना, राजमहलों में भी दुर्लभ स्त्री-रत्न, वह वेश्या-पुत्री थी, जिससे निराश होकर राजेन्द्र आत्मघात की अभिलाषा मन में संचित कर रहे थे और उनके मित्र जिसे विजय कर लेने का बीड़ा उठा चुके थे।

ये दोनों ही मित्र नगर के गण्यमान्य, धनी तथा अपार सम्पत्ति

वान व्यक्ति थे।

एक चरित्रवान व्यक्ति, जो स्त्रियों के सम्मुख अपने को पुरुष समझता हो, उस पुरुष की समझ में आ ही नहीं सकता था, जो प्रतिक्षण स्त्री-मात्र के लिए दास बना रहने का अभिलाषी था। और यही दोनों के जीवन की ऐसी विभिन्न दिशाएं थीं, जहां बहुधा दोनों मित्र टकराया करते थे।

इस बार रामेश्वर ने वेश्या के घर जाना स्वीकार करके राजेन्द्र को आश्चर्यचकित कर दिया। वह यह कौतूहल भी देखना चाहता था कि समस्त नगर की स्पर्धा और अभिलाषा की वस्तु हीरा को यह

कर सका, [illegible] तो मैं दस हजार रुपये हारा।"

"देखता हूं, तुम्हें शराब का नशा आ रहा है। अस्तु, यद्यपि किसी स्त्री को वश में लाने के लिए इतना आतुर होना 'पुरुषत्व' को न शोभा देने की ही बात है, पर पुरुषत्व का अर्थ अब तुम्हें सप्रयोग समझाना पड़ेगा। मुझे तुम्हारी चुनौती स्वीकार है। मैं आज ही हीरा को वश करूंगा, मगर तुम्हें मेरी आज्ञा के सर्वथा अधीन रहना पड़ेगा।"

"मुझे मंजूर है।"

दोनों मित्र विदा हुए।

उसका नाम था हीरा। रूप की हाट में उसके चढ़ते दिन थे। डेरेदार, ठिकाने की वेश्या थी। उसकी मा ने गाने-बजाने, अदब-कायदे की वेश्यावृत्ति-सम्बन्धी शिक्षा के सिवा उसे अंग्रेजी और हिन्दी-उर्दू की भी कुछ शिक्षा दी थी। लाखों की सम्पदा उसकी म कमाकर जवानी से उतरी थी। उसके बाद वह नायिका के पद प तीन-चार यौवनों का सम्पूर्ण सौदा कर चुकी थी। शहर की हवेल बीच चौक में अपनी शान नहीं रखती थी। नगर के बाहर की कोठ नवाबी ठाठ से सजी थी। हीरा जिस रंग की पोशाक पहनकर उतरत थी, उसी रंग के जवाहरात से जड़े गहने पहनती और उसी रंग रंगी मोटर में बैठती। नौकरों और ड्राइवरों की वर्दी भी उसी रं की होती थी। संध्या के समय हीरा के रूप और ठाट पर नगर की आंखें सड़कों पर बिछी रहती थीं। साधारण जमींदार तक वहां पहुंचने की हिम्मत न करते थे, सर्वसाधारण की बात तो दूर है। वेश्या जरूर थी, अस्मतफरोश जरूर थी, परन्तु कितनी महंगी! कितनी दुर्लभ! कितनी नफीस कि शहर में प्रायः सभी की जबान पर चाहे जब हीरा उछलने लगती थी!

हीरा की उम्र का सतरहवां साल जा रहा था। उसका रंग मोती के समान स्वच्छ और पानीदार था; गालों की सुर्खी—मानो छूते ही खून टपक पड़ेगा; होंठ और आंखें मानो परस्पर स्पर्धा करती थीं। अमृत और हलाहल विष का आंखों से अटूट झरना झरता ही रहता

।जो एक बार देखता भर जाता था, और क्षण-भर में ही जो
ा था। धवल दन्त-पंक्ति की बहार उन रस-भरे उत्फुल्ल होंठों
ारुण वर्ण के बीच कैसी मोहक, कैसी प्यारी लगती थी ! गर्दन
र वक्षस्थल मानो इटली के किसी कारीगर की संगमरमर पर
ी करामात थी। बढ़िया ईरानी कालीन पर बैठकर बिजली के
ध्र प्रकाश में, बिजली के पंखे के नीचे अपने महीन, सादे, उज्ज्वल
िधान में जब वह गाने बैठती थी, और उस हंस के समान शुभ्र
ण्ठ से इन कव्वाली और गजलों के स्थान पर जब विशुद्ध स्वर,
र, लय, मूर्छनायुक्त संगीत-लहरी का स्रोत बहता था, उस समय
बात क्या कही जाए ! उस उमड़ते रस-समुद्र में पहले वह स्वयं
ती, तब अर्धनिमीलित नेत्र, कम्पित कण्ठ-स्वर, फड़कते होंठ और
सता से अस्त-व्यस्त बिखरती हुई देह किस मर्द को मर्द बना
ने दे सकती थी !

ऐसी ही वह अप्रतिम रूप-गुण-सम्पन्ना, राजमहलों में भी दुर्लभ
ी-रत्न, वह वेश्या-पुत्री थी, जिससे निराश होकर राजेन्द्र आत्म-
ा की अभिलाषा मन में संचित कर रहे थे और उनके मित्र जिसे
वश कर लेने का बीड़ा उठा चुके थे।

ये दोनों ही मित्र नगर के गण्यमान्य, धनी तथा अपार सम्पत्ति
स्वामी थे। दोनों की ही सज्जनता में कलाम न था। पर युवक
जेन्द्र बाजार के पत्ते चाटने के शौकीन थे। उनके मित्र रामे-
र उनसे उम्र में कुछ बड़े थे और विचारवान, गम्भीर तथा चरित्र-
ान व्यक्ति थे।

एक चरित्रवान व्यक्ति, जो स्त्रियों के सम्मुख अपने को पुरुष
मझता हो, उस पुरुष की समझ में आ ही नहीं सकता था, जो
विलास स्त्री-मात्र के लिए दास बना रहने का अभिलाषी था। और
ही दोनों के जीवन की ऐसी विभिन्न दिशाएं थीं, जहां बहुधा दोनों
मत टकराया करते थे।

इस बार रामेश्वर ने वेश्या के घर जाना स्वीकार करके राजेन्द्र
ो आश्चर्यचकित कर दिया। वह यह कौतूहल भी देखना चाहता
ा कि समस्त नगर की स्पर्धा और अभिलाषा की वस्तु हीरा को दर

व्यक्ति और ऐसी कौन-सी वस्तु लेकर [illegible] में करेगा, जो मैं न दे सका था ; और···और यह 'पुरुषत्व' की कैसी विषम ज्वाला करेगा ? इसी विचार में एक प्रकार प्रगल्भिता राजेन्द्र पर लोटा।

उसी अनन्त प्रकाश में हीरा [illegible] बैठी थी । नाचते [illegible] दोनों शिथिल थे । राजेन्द्र के अनुरोध से कोठे के द्वार बन्द करा ए गए थे ।

हीरा को देखकर रामेश्वर के चित्त में एक अपूर्व भाव उत्पन्न आ । हाय ! गर्व को यह सौन्दर्य ! उन्होंने क्षण-भर में उस रूप को हृदयंगत कर एक बार कमरे पर दृष्टि डाली और एक मसनद सहारे उठक बैठे ।

संगीत-लहरी उठी और गिरी, जीवन आया और गया—राजेन्द्र लोटन कबूतर हो रहा था, मिनट-मिनट पर नोट फेंक रहा था ; पर रामेश्वर अचल-निर्विकल्प प्रतिमा की तरह हीरा के मुख पर दृष्टि दिए संगीत-सुधा पी रहे थे । उनके नेत्रों में कौतूहल नहीं, उन्माद नहीं, औत्सुक्य नहीं, विनोद नहीं, उदासीनता नहीं, मोह नहीं । सा ही होंठ में हास्य नहीं, स्पन्दन नहीं ।

बालिका वेश्या-पुत्री ने यह देखा, समझा—धीरे-धीरे वह इस वज्रपुरुष की ओर आकर्षित हुई । वह उसके होंठों में एक मुस्कान देखने की अभिलाषा लेकर, और भी यत्न. और भी कौशल, और भी मनोयोग से अपनी कलाओं का विस्तार करने लगी । उसके लला पर पसीना हो गया । वह थककर हांफने लगी । उसने लज्जित होक गाना बन्द कर दिया—जीवन में उसे पहली बार ही ऐसा नर्व पुरुष दिखा, जो उसे देखकर मरा नहीं और सुनकर जिया नहीं !

वह अपने वस्त्र संभाल, चांदी की तश्तरी में पान लेकर उठी ; प्रथम रामेश्वर के सामने अदब से झुककर तश्तरी की । रामेश्वर ने पान उठाया और सौ रुपये का नोट तश्तरी में फेंक दिया ।

क्षण-भर को हीरा अवाक् हुई । उसने एक ही क्षण में रामेश्वर को, नायिका को और तश्तरी को देखा । एक बार वह झुकी औ आगे बढ़ी ।

रामेश्वर उठ खड़े हुए। राजेन्द्र भी उठे। उस दिन फिर हीरा और नहीं गा सकी।

दो सप्ताह बीत गए। हीरा को नित्य ही गाना पड़ता, परन्तु उसका उल्लास और मग्न होना कहीं चला गया था। उसका मन उदास और चंचल रहता था। बहुधा वह गाते-गाते बहुत ही निरुत्साह हो जाती थी—कभी-कभी वह गाना बन्द कर एकदम ऊपर जाकर पड़ रहती थी। इस नई परिस्थिति का कारण वह स्वयं नहीं जानती थी, मानो कोई एक नई ठोकर उसके हृदय को लगी थी। किसी अदृश्य शक्ति से रामेश्वर की मूर्ति दिन-भर में लाखों बार उसके सम्मुख खड़ी हो जाती थी। हीरा का उस मूर्ति पर कितना क्रोध, कितनी विरक्ति और कितनी अवहेलना थी—परन्तु वह मूर्ति मानो उसके नेत्रों में तप्त शलाका की तरह घुस गई थी। वह कभी-कभी बहुत ही झुंझला उठती थी। वह सोचती थी, कैसा वह आदमी था—मानो गूंगा और बहरा, बिलकुल जड़, मूर्ख, गंवार! किन्तु···किन्तु वह नोट! नोट न था, रद्दी कागज़ का टुकड़ा था। तब क्या वह कुछ और ही था? क्या वह इस रूप को सचमुच ठुकरा गया? मेरे पसीने पर भी उसकी नज़र का एक बाल न खिला। वह एक भी बार न हंसा, न हिला, न बोला। वह मनुष्य न था, पत्थर था। निर्मम···हीरा सोचने लगी, क्या अब वह न आएगा? मैं उसे भाई ही नहीं, यही तो बात है! न मेरा रूप, न संगीत, न और कुछ ही उसे पसन्द आया, पर फिर वह नोट क्यों फेंक गया? और मैंने ही क्यों ले लिया? जिसे मैं पसन्द ही नहीं, जो मुन्दर—मेरी कला पर रीझा ही नहीं, उसका रुपया मैंने क्यों लिया? हाय! वह मुझे हरा गया, मेरा अपमान कर गया। हीरा गुस्से से होंठ चबाकर उठी, पूरे—कद्दे-आदम—शीशे के सामने उसने एक बार अपने अनिन्द्य यौवन की परछाईं को देखा, और फिर वह रोती हुई कुर्सी पर बैठ गई। उसने निश्चय कर लिया कि बदला लूंगी।

राजेन्द्र आते ही हीरा के अत्यन्त निकट बढ़ आए। उन्होंने उसे उदास देखकर कहा, "यह क्या! क्या आज बादल बरसनेवाले हैं?"

हीरा ने सिर उठाकर राजेन्द्र को देखा, [illegible] बैठी और बोली, "आप क्या मेरी [illegible] [illegible], जो अपने को इतनी [illegible] में हैं ?"

राजेन्द्र [illegible]। उन्होंने कहा, "आज तो बहुत ही नाराज़ होती हो, क्या मेरी कुछ ख़ता हुई ?"

"[illegible], [illegible] आपको नाराज़ी की भी भाँप लग गई ?"

कुछ भी न समझकर राजेन्द्र ज़ोर से हँस पड़े। हाय ! कितना पुरुषत्वहीन हास्य था वह ! वे और नज़दीक खिसककर हीरा से सट-कर बैठने लगे। हीरा ने दूर हटते हुए कहा :

"हाँ, आपके उन दोस्त का क्या हाल है ? फिर कभी तशरीफ़ नहीं लाए ? शायद गाना पसन्द नहीं आया। आजकल के लोग गुणों की कद्र कम करते हैं—समझते भी कम हैं।" पिछली पंक्ति कहते-कहते हीरा की आँखों में सौ रुपये का नोट आ खड़ा हुआ, वह स्वयं ही अपनी बात पर शंकित हो गई।

राजेन्द्र का उधर ध्यान न था। वे बोले, "उस दिन के बाद उन्होंने कुछ चर्चा ही नहीं चलाई। मगर गाना वे नहीं समझते, यह न कहना—वे स्वयं बहुत अच्छे गवैये हैं, सितार और दिलरुबा बजाने में शहर-भर में उनकी जोड़ का कोई नहीं। आज मैं उन्हें लाऊंगा।"

हीरा विकल हो उठी। आह ! उस दिन के बाद फिर चर्चा ही नहीं ! मुझे धिक्कार है ! यह रूप, यह यौवन, सब धिक्कार—धिक्कार ! हीरा इन तूफ़ानी विचारों को ज़ब्त न कर सकी। वह उठ खड़ी हुई और सोचने लगी, तब उस आदमी को प्रतिक्षण स्मरण करके मैंने अपना ही अपमान किया। उसने घृणा-मिश्रित स्वर में कहा, "जिसकी मर्ज़ी हो वह आए या न आए, हम लोग किसीको बुलाने तो नहीं जाते ?" राजेन्द्र फिर रात को उन्हें लाने का वादा करके चल दिए।

हीरा ने पक्का इरादा कर लिया कि आज वह उस मग़रूर पुरुष का अवश्य अपमान करेगी। परन्तु ज्यों-ज्यों दिन ढलता गया, हीरा

गई। वह
उसने कई
बाधा और
धोला, कई इत्र लगाए और मुह धोया, पर किस रूप मे, किस रंग मे, किस साज मे आज वह यौवन को प्रकाशित करे—वह निर्णय न कर सकी। उसने हठात् मा से पोशाक का प्रस्ताव किया।

बुढ़िया अवाक् रह गई, "पोशाक का क्या मतलब ! आज क्या कोई आना है ?"

हीरा झेंप गई। वह अपनी कोठरी मे भाग गई।

संध्या हुई। अन्धकार के हृदय को विदीर्ण करके हीरा ने बिजली का प्रकाश कमरे में फैलाया और ताज़े फूलों का एक बड़ा-सा गजरा गले में डाल, वह उस छकड़ा-भर रूप और यौवन को लेकर उस प्रकाश के हृदय में सचमुच हीरे ही के समान विराजमान हुई।

दोनों मित्रो ने घर मे प्रवेश किया। मन्त्रमुग्धा सर्पिणी की तरह हीरा खड़ी हो गई। मित्र बैठ गए। हीरा खड़ी रही। रामेश्वर ने क्षण-भर उसके मुख की ओर देखकर कहा, "बैठिए !"

हीरा बैठ गई। गर्व और उल्लास उसके यौवन को अरक्षित छोड़ भागा। वह विनय और सकोच से सकुचित यौवन को अपनी वेश्या-शक्ति के बल पर यथासम्भव चैतन्य करके गाने के आयोजन मे लगी।

रामेश्वर ने बाधा देकर कहा, "कष्ट न कीजिए, मुझे आपकी अम्माजी से कुछ बातें एकात मे करनी है। क्षमा कीजिएगा।"

हीरा अन्यमनस्का हो, उठकर बाहर चली गई। हाय रे आज का शृंगार !

नायका ने सुना, चौंकी और गम्भीर हुई। कुछ ही मिनट मे एकान्त-वार्ता समाप्त हुई। हीरा दो हजार रुपये मासिक पर रामेश्वर की नौकर हुई।

बिना उससे पूछे ही उसका सौदा हो गया, यह सुनकर हीरा बहुत क्रुद्ध हुई। उसने धरती पर पैर पटककर कहा—वह पुरुष !

वह नीरस, मक्कार, मूर्ख, बहरा पुरुष ! उसकी यह हिम्मत ! मैं उससे बदला लूंगी, मैं उसका हर तरह अपमान करूंगी। वह उसी क्रोध में भरी मालिका के पास गई। मालिका ने वेश्या-धर्म की कठोर मर्यादा का [illegible] [illegible] कर उसे शान्त किया। हीरा को उसी दिन मालिक की सेवा में नहीं आना पड़ा।

हीरा के लिए एक नये बंगले की आयोजना की गई। उसमें चार दासियां, दो दास और एक प्रबन्धक रख दिया गया। पोशाक और खाने-पीने की वस्तुओं की गिनती न थी। कमरों में बहुमूल्य वस्तुओं की सजावट का पार न था। शृंगार और ऐश्वर्य के नाते अटूट सम्पदा, जो कुछ वह खरीद सकती है, सब वहां प्रस्तुत था। हीरा की रुचि और अनुमान के अनुकूल आभूषण, मोटर और अन्य सामान प्रथम ही से उपस्थित कर दिए गए थे। उस राजमहल सदृश बंगले में आ कर हीरा चकित, भीत-विमूढ़ बनी खड़ी रही। यह सब कुछ हो सकता है, इसकी उसे कल्पना भी न थी। परन्तु इस समस्त वैभव के पीछे जो मूर्ति छिपी हुई है, वह···वह···निर्मम, रसहीन मूर्ति ? अरे ! ···हीरा सोचने लगी, क्या वह मूर्ख, बेतमीज और नीरस है ? ना, ना, यह तो सम्भव ही नहीं; यह सब तो कुछ और ही मालूम होता है। परन्तु चाहे जो कुछ भी हो, मैं उसका अपमान करूंगी। मैं कभी उसके अधीन न होऊंगी। संध्या हुई––बिजली के आलोक से बंगला इन्द्र-भवन हो गया, मानो अनगिनत आलोकित नक्षत्रों के नीचे हीरा छिप रही थी। उसने सहसा मोटर आने का शब्द सुना। उसने बलपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया––न बोलूंगी, न बोलूंगी, न बोलूंगी।

स्वयं मान करना और औरों का मान-भंजन करना हीरा का व्यवसाय था। वह पुरुष, जो नारी-हृदय का नहीं, नारी-शरीर का भूखा है––हीरा के द्वार पर खड़ा होता और धरती तक झुकता है ! यह दृश्य हीरा के नेत्रों को स्वाभाविक था; पुरुष की वह तस्वीर हीरा की चिरपरिचिता थी, जो हीरा के लिए प्यासी छटपटा रही थी। किन्तु उसी पुरुष-छाया के नीचे पौरुष का कुछ और भी रूप रहता है, यह हीरा को मालूम न था।

अपने सम्मान के अनुसार उससे भी अधिक, बहुत अधिक उनकार होगा उस मनुष्य को, जिसने उनके स्त्री-शरीर की जरा भी

[illegible] जा रहा है। हीरा क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुफकार मारकर, पैर पटक-पटककर जोर से कमरे में घूमने लगी। समस्त शृंगार किया हुआ रह गया, शत्रु सामने ही न आया। परन्तु हीरा पराजित योद्धा की तरह विचलित हो गई। उसने दासी को बुलाकर पूछा :

"क्या बाबू साहब आए थे ?"

"जी हां !"

"किसलिए ?"

"सरकार को कुछ चाहिए तो नहीं, यह देखने।"

"कुछ कहते थे ?"

"कहते थे कि मालकिन को कोई कष्ट न हो और उनका हुक्म फौरन तामील किया जाए।"

हीरा ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा, "हुक्म फौरन तामील किया जाए ?"

"जी हुजूर !"

"मेरा हुक्म है, यह शख्स बंगले में न घुसने पाए।"

[illegible] हुक्म दिया [illegible] रोने लगी। [illegible]

कई दिन बीत गए। रामेश्वर हीरा की आज्ञानुसार बंगले में नहीं आते। वे प्रतिदिन नियमित समय पर मोटर में आते और बंगले के कम्पाउण्ड के बाहर मोटर में ही बैठे-बैठे हीरा की कुशल ले जाते थे।

उस क्षण की बाट हीरा प्रातःकाल से सन्ध्या तक देखा करता।

मोटर को [illegible] थी। उन्हें आने से [illegible] हो जाती। प्रात [illegible] होने लगा। अब वह बिल-कुल [illegible] के सामने [illegible] हो गई थी। प्रतिदिन नया शृंगार, नई [illegible] था। पर आह रे पुरुष-पाषाण! एक बार भी [illegible] आलोक को देखना न था। [illegible] ने रूप और यौवन की हाट लगाई!

[illegible] को [illegible] रहना असह्य हो गया। यह भी कोई बात है! वे आते हैं, [illegible] जाते हैं, रानियों के ठाट और सुख दे रखे हैं। सब कुछ दे ही जाते हैं, मांगते कुछ नहीं। हाय! मैं इनका कब अपमान [illegible]? और कब [illegible]? क्या इन्हें मुझसे कुछ भी नहीं लेना है? मेरे पास क्या इस [illegible]-पुरुष को देने योग्य कुछ नहीं है? यह रूप, यह यौवन, यह शरीर, यह शृंगार—उफ्! नगर में इसके कितने दाम हैं? मगर दाम? दाम—दाम की बात याद करके वह सोचने लगी—दाम तो इन्होंने भी दिए हैं—इतना खर्च, इतना धन-व्यय, इतना यत्न! तब फिर यह किसलिए? इस सौन्दर्य को सुखाने या सड़ाने के लिए? हीरा विचार-सागर में डूबने-उतराने लगी पर थाह न मिली।

दस दिन और व्यतीत हो गए। हीरा के अस्वस्थ होने का समाचार पाकर रामेश्वर नगर के दो प्रमुख डाक्टरों को लेकर दौड़े। रामेश्वर बंगले के बाहर ही मोटर पर बैठे रहे। हीरा पलंग पर पड़ी थी। डाक्टरों ने आते ही यन्त्र संभाले।

हीरा ने उत्तेजित होकर कहा, "आप लोगों के कष्ट की जरूरत नहीं है, कृपा कर आप जाइए।"

डाक्टरों ने उसे समझाना चाहा। उसने झल्लाकर कहा, "वे—वे कहां हैं? हाय! वे कहां हैं?"

रामेश्वर ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। हीरा ने उधर से मुंह फेर लिया।

रामेश्वर ने कहा, "ज़रा आप इन्हें देख लेने दें।"

"आप इन्हें विदा करें।"

"किन्तु…"

"विदा कर दें।"

रामेश्वर ने डाक्टरों को विदा कर दिया।

रामेश्वर ने पूछा, "शायद आपकी तबीयत अब अच्छी है, ज़रा आराम करने से ठीक हो जाएगी।"

हीरा बोली नहीं। वह आंख भी न मिला सकी। उसके होंठ ज़रा फड़ककर रह गए।

रामेश्वर चलने को उद्यत हुए।

हीरा ने उद्विग्न होकर कहा, "ठहरिए!"

……

क्या पुरुष स्त्री को सम्पदा और ऐश्वर्य देकर पुरुषत्व से उऋण हो सकता है? स्त्री को पुरुष से जो कुछ चाहिए, उसके लिए भी क्या कोई पुरुष नारी को इतना तरसा सकता है? हीरा का कंठ अवरुद्ध था। वह टूटते शब्दों में, अश्रुधारा में डूबती हुई बोली, "आप… आप क्या थोड़ा विष मुझे नहीं दे सकते?" रामेश्वर ने करुणा, स्नेह और उदारता से कहा, "आप यह क्या कह रही हैं? आपके प्राणों के लिए मेरे प्राण, और आपके जीवन के लिए मेरा जीवन अभी हाज़िर है।"

"वही दो, वही दो, वही तो मुझे दो। ये मकान, ठाट, कोठी, बंगले, अटारी, महल—सबमें आग लगा दो। इस अधम शरीर के लिए आपने इतना किया, पर ये प्राण मुझे खाते हैं—जीवन मुझे खाता है; वही मुझे दो—अपना प्राण और अपना जीवन। मैं उसकी प्यासी हूं, इतना क्यों तरसाते हो निर्दयी, निष्ठुर?"

हीरा ने आवेश में वेदना कह दी। वह रामेश्वर पर झुक पड़ी, और उनकी कमीज़ पकड़ ली, फिर अचेत होकर धरती पर गिर गई।

रामेश्वर चंचल न हुए। उन्होंने धीरे से हीरा को उठाकर कोच पर लिटा दिया। होश में आने पर हीरा घबराकर रामेश्वर से लिपटने को दौड़ी। रामेश्वर ने ज़रा हटकर मधुर स्वर से कहा,

“कुछ [illegible] हुआ? आपको क्या कष्ट है?”

हीरा सिसककर रामेश्वर के पैरों में आ पड़ी। वह रो रही थी। [illegible] था, और टूट गया था। अब हीरा [illegible] रही थी, नारी-हृदय ही रहा था।

रामेश्वर ने कहा, “आप क्या चाहती हैं—कहिए तो! मैं शक्ति-भर आपकी सेवा करूंगा।”

“मैं क्या चाहती हूं, यह आप पूछते हैं? स्त्रियां पुरुषों से क्या चाहती हैं—यह आप पुरुष होकर नहीं जानते? आप ऐसे निष्ठुर पुरुष...” हीरा बीच ही में रुक गई। आवेश से उसके होंठ कांप रहे थे।

रामेश्वर ने संयत भाषा में कहा, “मैं अच्छी तरह जानता हूं कि स्त्रियां पुरुषों से क्या चाहती हैं। परन्तु आप स्त्री नहीं हैं, वेश्या हैं। यह दुःखद सत्य मुझे कहना ही पड़ा। वेश्या को जो मूल्य देना होता है, मैं शक्ति-भर दे रहा हूं।”

हीरा कुछ भी न समझी। वह बोली, “क्या वेश्याएं स्त्री नहीं होतीं?”

“नहीं!”

“कैसे?” हीरा ने गर्दन उठाकर पूछा।

रामेश्वर कहने लगे, “स्त्री जगत् की एक पवित्र स्वर्गीय ज्योति है। वह पुरुष-शक्ति के लिए जीवन-सुधा है। स्त्री के बल पर पुरुष असंख्य उत्तरदायित्वों का भीषण से भीषण भार वहन करके भी जीवित रह सकता है। वह स्त्री दया, प्रेम, पवित्रता, दान, करुणा और कोमलता की मूर्ति होनी चाहिए। त्याग उनका स्वभाव, प्रदान उनका धर्म, सहनशीलता उनका व्रत और प्रेम उनका जीवन है। परन्तु वेश्या जगत् की एक विकृत वस्तु है। देखने में मोहक और कोमल, किन्तु वास्तव में हलाहल विष। अपहरण उनका व्यवसाय, छल उनका स्वभाव, पाप उनका जीवन और पतन उनका मार्ग है। स्त्री जिस वस्तु को शरीर के टुकड़े-टुकड़े होने पर भी किसीको अर्पण नहीं कर सकती, वेश्या उसे खुले बाज़ार टके सेर बेचती है। जानती हो, वह क्या वस्तु है?”

"क्या वस्तु है ?"

"अस्मत। हाय! वह अस्मत, जिसका वास्तविक मूल्य इस पृथ्वी पर है ही नहीं, और विधाता ने स्त्री समझकर वह दी थी। उसे बस, वेश्याएं—कोढ़ी, कलंकी, पतित—चाहे जिसे भी बेच देती हो। तांबे के टुकड़ों में इतनी शक्ति हम स्वार्थी पुरुष भी कभी नहीं अनुभव कर पाते।"

इतना कहकर रामेश्वर क्षण-भर चुप रहे। हीरा चुपचाप निश्चल पैरों में नीचा सिर किए पड़ी थी। रामेश्वर ने अतिशय करुण स्वर से हीरा के सिर पर प्यार से हाथ रखकर, किंचित् आकाश की ओर मुंह उठाकर कहा, "अभागिनी नारी! इस शरीर का समर्पण तुम मलीन धन के बदले में चाहे जिस भी व्यक्ति को कैसे कर सकती हो? हाय! जैसे विष-पुष्प के सूंघते ही मृत्यु आती है, वैसे ही विष-पुष्प तुम हो। पुरुष, जो महान पौरुष के बल पर मनुष्य-समाज के भाग्य का निर्माता है, कैसे निकृष्ट होकर वेश्या का दास बन जाता है! तुम वेश्या…"

हीरा ने मोती के समान दो आंसू टपकाकर कहा, "आप मुझे वेश्या कहें!"

रामेश्वर अटककर बोले, "तब क्या कहूं?"

"मैं स्त्री हूं।"

रामेश्वर की आंखों में आंसू भर आए और टपक गए। वे चुपचाप कुछ देर तक हीरा के सिर पर हाथ धरे बैठे रहे। फिर बोले, "मैंने तुम्हें देखते ही समझ लिया था कि तुम स्त्री-रत्न हो, पर तुम्हारी चाहना उस वस्तु की न थी, जो किसी स्त्री की होनी चाहिए। वेश्या होना स्त्रीत्व से पतित होना है। वेश्या बनकर कोई स्त्री स्त्री भी रह ही नहीं सकती। मैंने यह सोचकर कि वेश्यावृत्ति करने की [illegible] और नागरिक उदय होगा, इस देवतुल्य शरीर को वेश्या के लिए जो मूल्य देना था, देकर ले आया। मैंने निश्चय किया था। वेश्या-पुत्री हो तो क्या, वेश्या कभी न बनने दूंगा। पर क्या सचमुच तुम स्त्री बनना चाहती हो?"

"अवश्य परन्तु…"

[illegible] तू कहाँ ?"

[illegible] पुकार दिया।

[illegible] 'सीता, सीता !"

[illegible] कहा, 'मालिक मेरे ! क्या [illegible] मुझे [illegible] होगा ?"

[illegible] ने [illegible] का पल्ला पकड़ लिया। उसने कहा, "मैं [illegible] हूँ।"

[illegible] उन्होंने कहा, "[illegible] ! इसी ही के लिए मुक्त है।"

मास्टर साहब

माना भरी बैठी थी। मास्टर साहब ने ज्योंही घर में कदम रखा, उसने विषदृष्टि से पति को देखकर तीखे स्वर में कहा, "यह अब तुम्हारे आने का समय हुआ है? इतना कह दिया था कि आज मेरा जन्मदिन है, चार मिलनेवालियां आएंगी, बहुत कुछ बन्दोबस्त करना है, जरा जल्दी आना। सो, उल्टे आज शाम ही कर दी।"

"पर लाचारी थी, प्रभा की मां! देर हो ही गई।"

"कैसे हो गई? मैं कहती हूं, तुम मुझसे इतना जलते क्यों हो? इस तरह मन में गांठ-गांठ रखने से फायदा? साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम्हें मैं फूटी आंखों भी नहीं सुहाती?"

"यह बात नहीं है, प्रभा की मां, तनख्वाह मिलने में देर हो गई। एक तो आज इन्स्पेक्टर स्कूल में आ गए, दूसरे आज फीस का हिसाब चुकाना था। तीसरे कुछ आफिस का काम भी हेडमास्टर साहब ने बता दिया। करना पड़ा। फिर आज तनख्वाह मिलने का दिन नहीं था—कहने-सुनने से हेडमास्टर ने बन्दोबस्त किया।"

'सो उन्होंने बड़ा अहसान किया। घर करतो भी तुमसे आशा है। मैं पूछती हूं, देर क्यों कर दी—आप सबे आराम पाते। देखूं कैसे कहा है।'

मास्टर साहब ने कोट अभी-अभी खूंटी पर टांगा ही था कि उसकी जेब से पर्स निकालकर आंगन में उलट दिया। दस-दस रुपए के चार नोट जमीन पर फैल गए। उन्हें एक-एक गिनकर माना ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा, "चालीस ही है, बस?"

"चालीस ही तो पाता हूं, ज्यादा कहां से ले दूं?"

[illegible] ।"

[illegible] है।

[illegible] !"

[illegible] कहा, "मालिक मेरे! [illegible] ?"

[illegible] पकड़ लिया। [illegible] हूँ।"

[illegible] कहा, "मित्र! इसी के लिए [illegible] है।"

मास्टर साहब

माता भरी बैठी थी। मास्टर साहब ने ज्योंही घर में कदम खा, उसने विषदृष्टि से पति को देखकर तीखे स्वर में कहा, "यह ब तुम्हारे आने का समय हुआ है ? इतना कह दिया था कि आज ा जन्मदिन है, चार मिलनेवालियां आएंगी, बहुत कुछ बन्दोबस्त रना है, जरा जल्दी आना। सो, उल्टे आज शाम ही कर ली।"

"पर लाचारी थी, प्रभा की मां ! देर हो ही गई।"

"कैसे हो गई ? मैं कहती हूं, तुम मुझसे इतना जलते क्यों हो? स तरह मन में गांठ गांठ रखने से फायदा ? साफ क्यों नहीं कह ते कि तुम्हें मैं फूटी आंखों भी नहीं सुहाती ?"

"यह बात नहीं है, प्रभा की मां, तनखाह मिलने में देर हो गई। क तो आज इन्स्पेक्टर स्कूल में आ गए, दूसरे आज फीस का हिसाब करना था। तीसरे कुछ आफिस का काम भी हेडमास्टर साहब ने ता दिया। करना पड़ा। फिर आज तनखाह मिलने का दिन नहीं ा—कहने-सुनने से हेडमास्टर ने बन्दोबस्त किया।"

"तो उन्होंने बड़ा अहसान किया। कल कलको भी मिलती तो क्या । मैं पूछती हूं, देर क्यों कर दी—आप गये कहां थे। देखूं पये कहां है।"

मास्टर साहब ने कोट अभी-अभी खूंटी पर टांगा ही था कि सकी जेब से पर्स निकालकर आंगन में उलट दिया। दस-दस रुपए चार नोट जमीन पर फैल गए। उन्हें एक-एक गिनकर माता ने ख-भौं चढ़ाकर कहा, "चालीस ही है, बस ?"

"चालीस ही तो पाता हूं, ज्यादा कहां से ले आऊं ?"

"अच्छा," और घर से बाहर हो गए।

बहुत रात बीते जब वे लौटे तो घर में खूब चुहल हो रही थी। ामा की सखी-सहेलियां सजी-धजी, गा-बजा रही थीं। अभी उनका ाना पीना नहीं हुआ था। भामा ने बहुत-सा सामान बाजार से गा लिया था। पूड़ियां तली जा रही थीं और घी की सोंधी महक र में फैल रही थी।

पति के लौट आने पर भामा ने ध्यान नहीं दिया। वह अपनी हेलियों की आवभगत में लगी रही। मास्टर साहब बहुत देर तक पने कमरे में पलंग पर लेटे भामा के आने और भोजन कराने की ीक्षा करते रहे, और न जाने कब सो गए।

"रात को भूखे ही सो रहे तुम, खाना नहीं खाया ?"

"कहा, तुम काम में लगी थीं। मुझे पड़ते ही नींद आई तो फिर ाख ही नहीं खुली।"

"मैं तो पहले ही जानती थी कि बिना इस दासी के लाए तुम खा हीं सकते। रोज ही तो चाकरी बजाती हूं। एक दिन मैं तनिक नी मिलनेवालियों में फंस गई, सो रूठकर भूखे ही सो रहे। सो क बार नहीं सौ बार सो रहो। यहां किसीकी धौंस नहीं सहनेवाले ।"

"लेकिन प्रभा की मां, इसमें धौंस की क्या बात है ? मुझे नींद ही गई।"

"आ गई तो अच्छा हुआ, अब महीने के खर्च का क्या होगा ?"

"ट्यूशन ही के बीस रुपये जेब में पड़े हैं, उन्हींमें काम चलाना ा।"

"ट्यूशन के बीस रुपये ! वे तो रात काम में आ गए। मैंने ले ए थे।"

"वे भी खर्च कर दिए ?"

"बड़ा कसूर किया, अब फांसी चढ़ा दो।"

"नहीं, नहीं, प्रभा की मां ! मेरा ख्याल था चालीस रुपये में तुम

[illegible] [illegible] होगी, तेल [illegible] देंगे। इसी तरह [illegible] महीना कट जाएगा।"

"यह तो रोज का रोना है। तकदीर की बात है, यह घर मिला तो कहीं तकदीर में लिखा था। पर क्या किया जाए! अपनी लाज तो ढकनी ही पड़ती है। [illegible] भूखे-नंगे हों, पराओं के सामने तो नहीं रह सकते। [illegible] बड़े घर की बहू-बेटियां थीं, कोई नटोंक-चमारिन तो थी नहीं। फिर [illegible] की औकात ही क्या है?"

मास्टर साहब चिन्ता में सिर खुजाने लगे; उन्हें कोई जवाब नहीं सूझा। महीने का खर्च चलेगा कैसे, यही चिन्ता उन्हें सता रही थी। अभी दूधवाला आएगा, धोबी आएगा। वे इस माह में जूता पहनना चाहते थे—बिलकुल काम लायक न रह गया था। परन्तु अब जूता तो एक ओर रहा, और आवश्यक खर्च की ही चिन्ता सवार हो गई।

पति को चुप देखकर भामा झटका देकर उठी। उसने कहा, "अब इस बार तो कसूर हो गया भई, पर अब किसीको नहीं बुलाऊंगी। इस अभागे घर में तो पेट के झोले को भर लिया जाए, तो ही बहुत है।"

उसने रात का बासी भोजन लाकर पति के सामने रख दिया। मास्टर साहब चुपचाप खाकर स्कूल को चलने लगे।

भामा ने कहा, "बिना कहे तो रहा नहीं जाता; अब तेली, तम्बोली, दूधवाला आकर मेरी जान खाएंगे। क्या कहूं उनसे, बोलो तो? तुम्हें तो अपनी इज्जत का खयाल ही नहीं, पर मुझसे तो इन नीचों के तकाजे नहीं सहे जाते।"

मास्टरजी ने धीमे स्वर में नीची नजर करके कहा, "करूंगा प्रबन्ध, जाता हूं।"

"लेकिन, क्यों सहती हो बहिन? इन पुरुषों की प्रभुता का जुआ हमें अपने कंधे पर से उतार फेंकना होगा। हमें स्वतन्त्र होना होगा; हम भी मनुष्य हैं—पुरुषों की भांति। कोई कारण नहीं जो [illegible] के लिए घर-गिरस्थी करें, उनके लिए बच्चे पैदा करें और [illegible]

उनकी गुलामी करती हुई मर जाए।"

माया की आँखें चमकने लगीं। उसने कहा, "यही तो मैं भी सोचती हूँ, श्रीमतीजी। आप ही कहिए, चालीस रुपये की नौकरी, फिर दुख-भोग भी बने रहना चाहते हैं। आप ही कहिए, दुनिया में एक से एक बढ़कर भोग हैं, क्या मनुष्य का दिल उन्हें भोगना न चाहेगा?"

"क्यों नहीं, फिर वे भोग बने किसके लिए हैं? मनुष्य ही तो उन्हें भोगने का अधिकार रखता है।"

"यही तो, पर पुरुष ही उन्हें भोग पाते हैं। वे ही शायद मनुष्य हैं, हम स्त्रियाँ जैसे मनुष्यता से भी हीन हैं।"

[illegible]

हो जाओ। इसमें हम न केवल स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ते-पढ़ाते हैं, बल्कि स्त्रियों को स्वावलम्बी रहने योग्य भी बनाते हैं। हमारा एक स्कूल भी है, जिसमें सिलाई, कसीदा और भाँति-भाँति की दस्तकारियाँ सिखाई जाती हैं। गायन-नृत्य के सीखने का भी प्रबन्ध है। तुम जीवन चाहती हो, तो हमारे संघ में तुम्हें भरपूर जीवन मिलेगा।"

"तो मैं, श्रीमतीजी, आपके संघ और स्कूल दोनों ही की सदस्य होती हूँ। जब वे स्कूल चले जाते हैं तो दिन-भर घर में पड़ी उनके आने का इन्तज़ार करती रहती हूँ। तो भी इस आशा में नहीं कि वे मेरे लिए कुछ उपहार लेकर आते होंगे या मेरे साथ बैठकर दो बोल हँस बोलेंगे। ईश्वर जाने कैसी रूखी तबीयत पाई है। चुपचाप आते हैं, थके हुए, परेशान-से और चुप। मुस्करा भी नहीं सकते कि [illegible]-पन। प्रभा है, उनकी लड़की, उसी से रात को हँसते-बोलते हैं। यह दिन यह कोई जीवन है? नरक, नरक! सिर्फ मैं हूँ जो यह सब सहती हूँ।"

"मत सहो, मत सहो बहिन, अपने आत्मसम्मान और स्वाधीनता की रक्षा करो।"

"यही करूँगी श्रीमतीजी, यही करूँगी।"

मास्टर साहब ने कहा, "और खाना?"
"नहीं खाऊंगी।"
"कहां खाया?"
"खा लिया।"
और प्रश्न नहीं किया। मास्टर साहब भी सो गए।

भामा प्रायः नित्य ही महिला संघ में जाने लगी। उन्मुक्त वायु में स्वच्छन्द सांस लेने लगी, पढ़ी-लिखी, उन्नतशील कहानेवाली लेडियों-महिलाओं के संपर्क में आई, जितना पढ़ सकती थी, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने लगी। उसने सुना—उन महामहिम महिलाओं में, जो सभाओं और जलसों में ठाटदार साड़ी धारण करके सभानेत्रियों के आसन को सुशोभित करती हैं, चारों ओर स्त्री-पुरुष जिनका आदर करते हैं, जिन्हें प्रणाम करते, हंस-हंसकर झुककर जिनका सम्मान करते हैं, उनमें कोई घर को त्याग चुकी है, कोई पति को त्याग चुकी है; उनका गृहस्थ-जीवन नष्ट हो चुका है, वे स्वच्छन्द हैं, उन्मुक्त हैं, वे बाधाहीन हैं, वे कुछ घंटों ही के लिए नहीं, प्रायः महीनों तक जहां चाहें रहें और जहां चाहें जा सकती हैं। उन्हें कोई रोकनेवाला नहीं, उनकी इच्छा में बाधा डालनेवाला नहीं है। उसे लगा, यही तो स्त्री का सच्चा जीवन है, वे गुलामी की बेड़ियों को तोड़ चुकी हैं, वे नारियां धन्य हैं।

एक दिन एक सभा में जब सभानेत्री महोदया, तालियों की गड़गड़ाहट में ऊंची कुर्सी पर बैठीं (उपस्थित प्रमुख पुरुषों और महिलाओं ने उन्हें सादर मोटर से उतारकर फूलमालाओं से लाद दिया था) तो भामा के पास बैठी एक महिला ने मुंह बिचकाकर कहा, "मालूम है हुजूर! यहां ये आज हैं, वहां खसम ने पीटकर घर से निकाल दिया है।"

"क्यों? ऐसा क्यों है?"
दिन पराये मर्दों के साथ घूमने
[illegible] ? चरित्रवाली
[illegible] करता! और घर-

[illegible] !”

“जो [illegible] देखभाल हो भी नहीं सकती।”

“आप ठीक कहती हैं ! जो अपने पति और बाल-बच्चों की सेवा नहीं कर सकती, अपनी घर-गिरस्ती को नहीं संभाल सकती, वह देश-सेवा क्या करेगी ? देश के शांत जीवन में अशान्ति की आग अवश्य लगाएगी।”

भामा को ये बातें चुभ रही थीं। उससे न रहा गया। उसने तीखी होकर कहा, “क्या [illegible] लगाए हो बहिन ! घर-गिरस्ती जाकर संभालो न, यहां [illegible] करने क्यों आई हो ?”

महिला चुप तो हो गई पर उसने तिरस्कार और अवज्ञा की दृष्टि से एक बार भामा को और एक बार सभानेत्री को देखा।

भामा सिर्फ स्त्रियों ही के जलसों में नहीं आती-जाती थी, वह उन जलसों में भी भाग लेने लगी, जिनमें पुरुष भी होते। बहुधा वह स्वयंसेविका बनती, और ऐसे कार्यों में तत्परता दिखाकर वाह-वाही लूटती। उसकी लगन, तत्परता, स्त्री-स्वातन्त्र्य की तीव्र भावना के कारण इस जाग्रत् स्त्री-जगत् में उसका परिचय काफी बढ़ गया। वह अधिक विख्यात हो गई। लीडर स्त्रियों ने उसे अपने काम की समझा, उसका आदर बढ़ा। भामा इससे और भी प्रभावित होकर इस सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ती गई और अब उसकी वह क्षुद्र-दरिद्र गिरस्थी, छोटी-सी पुत्री और समाज में अतिसाधारण-सा अध्यापक, उसका पति, सब कुछ हेय हो गया।

वह बहुत कम घर आती। बहुधा मास्टर साहब को खाना स्वयं बनाना पड़ता, चाय बनाना तो उनका नित्यकर्म हो गया। पुत्री प्रभा की सार-संभार भी उन्हें करनी पड़ने लगी। वे स्कूल जाएं, ट्यूशन करें, बच्ची को संभालें, भोजन बनाएं और घर को भी संभालें। यह सब नित्य-नित्य सम्भव नहीं रहा।

घर में अव्यवस्था और अभाव बढ़ गया। भामा और भी तीखी और निडर हो गई। वह पति पर इतना भार डालकर, उसकी यत्किंचित् भी सहायता न करके, उसकी सारी सम्पत्ति को अधिकृत करके

मा निरन्तर उससे क्रुद्ध और असन्तुष्ट रहने लगी। पति की क्षुद्र आय का अब सबसे बड़ा भाग उसकी साड़ियों मे, चन्दों मे, तांगे के भाड़े में और मित्र-मित्राओं के चाय-पानी मे खर्च होने लगा। मास्टर साहब को मित्रों से ऋण लेना पड़ा। ऋण मास-मास बढने लगा और

के कपड़े फट गए, उन्होंने और ट्यूशन कर ली। वे रात-दिन पिसने लगे। छोटी-सी बच्ची चुपचाप अकेली घर मे बैठी पिता और माता के आगमन की प्रतीक्षा करने की अभ्यस्त हो गई। बहुधा वह बहुत रात तक, सन्नाटे के आलम में, अकेली घर मे डरी हुई, सहमी हुई बैठी रहती; कभी रोती, कभी रोती-रोती सो जाती, बहुधा भूखी-प्यासी।

"किन्तु रुपये तो अभी नही हैं, साड़ी भी आना मुश्किल है, अगले महीने मे…"

भामा गरज पड़ी, "अगले महीने मे या अगले साल मे? आखिर क्या मैं भिखारिन हू? मैं भी इस घर की मालकिन हू। ब्याही आई

! इधर

"मुझे तुम्हारे कर्जों से क्या मतलब? कमाना मर्दों का काम है या औरतों का? कहो तो मैं कमाई करू जाकर?"

"नहीं, नहीं, यह मेरा मतलब नहीं। पर अपनी जितनी आमदनी है उतनी…"

"भाड़ में जाए तुम्हारी आमदनी! मुझे साड़ी चाहिए, और दस रुपये।"

"तो बन्दोबस्त करूंगा।" मास्टर साहब और नहीं बोले, छाता संभालकर चुपचाप चल दिए।

[illegible] रही। वह घर न आ सकी। [illegible] हो [illegible] थे। उनमें [illegible] थी। अब वह एक बच्ची की मां, एक पति की [illegible] एक घर की गृहिणी नहीं—एक आधुनिकतम महिला-उद्धारक स्त्री थी, पुरुषों से, गृहस्थी की रूढ़ियों से, दरिद्र जीवन से सम्पूर्ण विद्रोह करनेवाली। वह बात-बात पर पति से झगड़ा करने लगी। प्रभा को अकारण ही पीटने लगी। तनिक-सी भी बात मन के विपरीत होने पर निकलकर घर से चली जाती और दो-दो दिन गायब रहती। उनकी बहुत-सी सखी-सहेलियां हो गई थीं, बहुत-से अड्डे बन गए थे जिनमें स्कूलों की मास्टरनियां, अध्यापिकाएं, विधवाएं, प्रौढ़ाएं और स्वच्छन्द जीवन का रस लेनेवाली अन्य अनेक प्रकार की स्त्रियां थीं। उनमें से प्रायः सभी ने स्त्रियों के उद्धार का व्रत ले रखा था।

इन सब बातों से अन्ततः एक दिन मास्टर साहब का समुद्र-सा गम्भीर हृदय भी विचलित हो गया। पत्नी के प्रति उत्पन्न रोष को वे यत्न करके भी न दबा सके। प्रभा दो दिन से ज्वर में बेहोश थी, और भामा दो दिन से गायब थी—किसी कार्यवश नहीं, क्रुद्ध होकर। प्रभा ने 'अम्मा-अम्मा' की रट लगा रखी थी। उसके होंठ सूख रहे थे, बदन तप रहा था। मास्टर साहब स्कूल नहीं जा सके थे। ट्यूशन भी नहीं, खाना भी नहीं। वे पुत्री के पास बैठे पानी से उसके होंठों को तर करते, 'अम्मा आ रही है' कहकर धीरज देते, फिर एक गहरी सांस के साथ हृदय के दुःख को बाहर फेंकते और अपने दांतों से होंठ दबा लेते और भामा के प्रति उत्पन्न क्रोध को दबाने की चेष्टा करते।

भामा आई तो उसने न रुग्ण पुत्री की ओर देखा, न भूख-प्यास से जर्जर चिंतित पति को। वह भरी हुई आकर अपनी कोठरी में द्वार बन्द करके पड़ गई।

अन्त में मास्टर साहब ने कोठरी के द्वार पर जाकर कहा, "प्रभा को बहुत तेज ज्वर है, प्रभा की मां, तनिक आओ तो।"

"मैं क्या वैद्य-डाक्टर हूं!" भीतर से भामा ने कहा।

"नहीं, वह तुम्हें बहुत याद कर रही है, तनिक उसके पास

बैठो।"

"तुम बैठे तो हो।"

"वह तुम्हें पुकार रही है, आओ।"

"मैं थक रही हूं, मेरी जान मत खाओ।"

"कैसी बात कहती हो, प्रभा की मा! वह तुम्हारी बेटी है।'

"तुम्हारी भी तो है।"

"बच्चों की देखभाल तो मा ही कर सकती है, प्रभा की मा।"

"पर बच्चे मा के नहीं, बाप के हैं। उन्हें ही उनकी सभाल करनी चाहिए।"

"पर तुम जरा बच्ची के पास तो आओ।"

"भाड़ में जाए बच्ची, मुझे जरा सोने दो, मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

"यह तुम क्या कह रही हो, प्रभा की मा!"

"तुम उसे नहीं समझ सकोगे। स्कूल की किताबों में वह बात नहीं लिखी।"

हो प्रभा की मा!' उन्होंने थूक सटका और चले गए।

सुबह बड़ी देर तक भी जब भामा अपनी कोठरी से बाहर नहीं आई तब मास्टर साहब, रात-भर की जागी हुई, फूली हुई, सुर्ख आंखों की कोर में वेदना और उदासी भरे, प्रभात की वेला में झपकी लेती, कंगाल बच्ची को चुपके से छोड़कर फिर पत्नी की कोठरी को गए। रात के गुस्से को भूलकर उन्होंने पुकारा, "प्रभा की मा, उठो तो तनिक, दिन बहुत चढ़ आया है।"

पर दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा, कोठरी का द्वार खुला है और भामा वहां नहीं है, कोठरी सूनी है, बिछौना खाली है। भीतर जाकर देखा, एक पुर्जा लिखा रखा था। उसमें लिखा था:

"मेरी आंखें खुल गई हैं, मैं अपने अधिकार को जान गई हूं। मैं भी आदमी हूं, जैसे तुम मर्द लोग हो, और मुझे भी मर्दों की ही भांति

[illegible] रहने का अधिकार है। मैं तुम्हारे लिए गृहस्थी को चलाना [illegible] करने से इनकार करती हूँ। [illegible] करने, उनके नप-तुले उत्तर, तुम्हारे [illegible] मनाने से इनकार करती हूँ। मैं जाती हूँ और कह जाती हूँ कि तुम्हें मुझे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार नहीं। तुम्हारी चालीस रुपये की हैसियत में मैं अपने को [illegible] नहीं बना सकती।"

मास्टर साहब की आंखें फट पड़ीं, मुंह फैला रह गया। वे वहीं चारपाई पर बैठकर दो-तीन बार उस पत्र को पढ़ गए। और सब बातों को भूलकर वे यही सोचने लगे—आखिर प्रभा यह सब लिख कैसे सकी? बिलकुल ग्रामोफोन की सी भाषा है, व्याख्यान के नपे-तुले शब्द, वाक-निपुण युक्ति, सुगठित भाषा। ऐसा तो वे भी नहीं लिख सकते। प्रभा यह सब कहां से सीख गई? क्या उसने सत्य ही उन सब गम्भीर बातों पर, स्त्री-स्वातन्त्र्य पर, सामाजिक जीवन के इस असाधारण स्त्री-विद्रोह पर पूरा-पूरा विचार कर लिया है? क्या वह जानती है कि इस मार्ग पर जाने से उसपर क्या-क्या जिम्मेदारियां आएंगी? मैं तो उसे जानता हूं वह कमजोर दिमाग की स्त्री है, एक असहनशील पत्नी है, एक निर्मम मां है। वह इन सब बातों को समझ ही नहीं सकती। परन्तु वह यह सब लिख कैसे सकी? घर त्यागने का साहस उसमें हो सकता है, यह उसकी दिमागी कमजोरी और असहनशीलतापूर्ण हृदय का परिणाम है; परन्तु उसके कारण इतने उच्च, इतने विशाल, इतने क्रान्तिमय हैं, यह प्रभा समझ नहीं सकती। वह सिर्फ भरी गई है, भुलावे में आई है। ईश्वर करे, उसे सुबुद्धि प्राप्ति हो, वह लौट आए···मेरे पास नहीं; मैं जानता हूं, मैं अच्छा पति नहीं, मैं उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर सकता, मेरी क्षुद्र आमदनी उसके लिए काफी नहीं है। फिर भी प्रभा के लिए लौट ही आना चाहिए उसे। पता नहीं कहां गई, पर उसे तलाश करना होगा। उसके गुस्से को इतना सहा है, और भी सहना होगा। और उसने समझा हो या न समझा हो, उसका यह कहना तो सही ही है कि मुझे उसे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार ही नहीं है।

क्षण-भर के लिए मास्टर साहब स्तब्ध बैठे रहे। उनकी तनखाह के गोलमोल चालीस रुपये झन-झन करके उनके कानों में चालीस की गिनती कर गुम-गुम होने लगे और उनकी दरिद्रता, असहाय गृहस्थी विद्रूप कर हो-हो करके उनका उपहास करने लगी।

"मैं आज इस गुलामी की बेड़ियों को तोड़ आई हूं, श्रीमतीजी।"

"शाबाश, तुम्हारे साहस की जितनी तारीफ की जाए, थोड़ी है। मैं समझती हूं कि अब तुम अधिक आज़ादी से अपनी बहिनों और अपने देश की सेवा कर सकती हो।"

सिर्फ सब सामान को फेहरिस्त रखना, चीज़ों को संभालना और तैयार माल को बाज़ार में बेचना—यही काम तुम्हें करना होगा।"

"और सब तो ठीक है, पर बाज़ार में बेचना, यह मुझसे कैसे होगा? मैं तो कभी बाज़ार जाती नहीं, लोगों से बात करती नहीं।"

"तो क्या मैं समझूं, यह भीरुता, यह कमज़ोरी तुममें अभी बनी ही रहेगी?"

"पर श्रीमतीजी ..."

"पर-वर कुछ नहीं। हरिया तुम्हारे साथ रहेगा। वह तुम्हारे कानों में खूब चट है। निरा हथलपक है, जो माल बेचना है या खरीदना है, अपनी मुट्ठी भी गर्म करता है। अब तुम्हारी निगरानी में वह ऐसा नहीं कर सकेगा।"

"पर मैं काम कुछ जानती नहीं हूं, श्रीमतीजी! कहीं कोई भूल-चूक हो गई तो..."

"तो क्या हुआ, भूल-चूक भी इन्सान से ही होती है। फिर सब काम करने ही से तो आते हैं, कोई पेट से तो सब सीखकर पैदा नहीं होता।"

"तब ठीक है श्रीमतीजी, अब मेरे खाने-पीने का क्या होगा?"

"तुम्हें बीस रुपया माहवार मिलेगा। रहने को मकान स्कूल ही में मिलेगा। काम सीख लेने पर और कुछ और पढ़-लिख जाने पर

[illegible]

[illegible] मन बैठ रहा था। [illegible] था। [illegible] नौकरी, दिन- [illegible] हाँ, माँ! मैं [illegible]

[illegible] आगे पर, तो एक कोठरी से भी [illegible]। एक [illegible] कोठरी, गन्दी और सूनी। बराबर की कोठरी में [illegible] रखा था। उसकी [illegible] फैली हुई अध-जली बीड़ियाँ [illegible] नहीं लगी थीं। एक टूटी खाट और पुराना घड़ा, पानी से भरा, एक कोने में रखा था।

[illegible] देखकर उसे अपना घर, गरीब पर साफ-सुथरा, छोटी-सी चिड़िया प्रभा और सदा शान्त-शिष्ट रहनेवाले पति की याद आने लगी। पर उसने दृढ़तापूर्वक आगे कदम बढ़ाने की ठान ली। कोठरी उसने झाड़-बुहार कर ठीक कर ली। हरिया से उसने कहा :

"लेकिन चारपाई, बिछौना, सामान—मेरे पास तो कुछ नहीं है।"

"आज-भर मेरी चारपाई ले लो; पैसे हों तो दो, मैं सामान ला दूं; कल बन्दोबस्त कर लेना।"

"लेकिन मेरे पास पैसे भी तो नहीं है।"

"तो तुमने बड़ी बीवी से मांगे क्यों नहीं ?"

भामा को उस नीच चपरासी का 'तुम, तुम' करके बातें करना बहुत बुरा लगा। उसकी चारपाई मंगनी लेना, उसीकी बगल की सूनी कोठरी में अकेली रहना और बिना साज-सामान गृहस्थी बसाना—उसे यह सब एक असह्य, अनहोनी-सी बात लगने लगी।

उसने सोचा, चलो, घर लौट चलूं। पर मन फिर मचल गया। उसने 'तुम' कहकर उस बात करनेवाले हरिया से 'तू' कहकर बात की। कहा, "चल ज़रा मेरे साथ बीवीजी के घर, मैं उनसे ज़रूरी सामान का बन्दोबस्त करने को कहूं।"

हरिया को यह तू-तड़ाक पसन्द नहीं आई। उसने धृष्टता से कहा, "मैं स्कूल का नौकर हूं, तुम्हारा नहीं, और रात-दिन की नौकरी भी नहीं करता। मैं इस समय कहीं नहीं आ-जा सकता।" वह भीतर अपनी कोठरी में चला गया।

मानिनी भामा तमाम रात भूखी-प्यासी, ठिठुरती उस कोठरी के कोने में भीतर से द्वार बन्द करके बैठी रही। एक-एक करके उसके सामने पति के प्यार, सहिष्णुता, अधीनता के चित्र खिचने लगे। उसे ख्याल हुआ—उनकी यह दरिद्रता, उनकी अकर्मण्यता में नहीं है, देश के वातावरण से, लाचारी से और परम्परा से ही है। उसे रह-रहकर अपनी बच्ची की याद आने लगी, जो ज्वर में अपने सूखे होंठों से अम्मा को पुकार रही थी। उसे पति के अभ्यस्त मधुरतम सम्बोधन 'प्रभा की मां' की याद आ रही थी। झर-झर उसकी आंखों से आंसू बहते रहे, वह रोती रही। भूख प्यास से थकित, शिथिल, गन्दी अंधेरी कोठरी में बैठी वह मन ही मन कहने लगी—'यह हमारी, हम स्त्रियों की स्वाधीनता का पथ है।'

दूसरी कोठरी में हरिया और उसके यार-दोस्त चण्डू में दम लगा रहे थे, गन्दी बातें बक रहे थे, और बीच-बीच में भामा को लेकर बहुत-सी उचित-अनुचित बातें बक रहे थे।

"किन्तु श्रीमतीजी, भामा मेरी पत्नी है।"

"कह तो दिया, आप नहीं मिल सकते।"

"मगर मिलना बहुत जरूरी है। श्रीमतीजी, उसकी बच्ची बहुत बीमार है।"

"महाशय, वह आपसे मिलना नहीं चाहती, आपसे कोई सरोकार रखना नहीं चाहती। ऐसी हालत में आप उससे जबरदस्ती नहीं मिल सकते।"

"जबरदस्ती नहीं, श्रीमतीजी, मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूं।"

"आप नाहक हमारा सिर खाते हैं।"

"लेकिन उसने उचित नहीं किया है, उसे सोचना होगा और आपको भी उसे समझाना चाहिए। सोचिए तो सही, वह एक पति

की पत्नी ही नहीं, एक बच्चे की मां भी है।"

"वह अपना अभिभावक आप बन सकती है, उसे आपकी शिक्षा का आवश्यकता नहीं।"

"है, श्रीमतीजी, है, उसे मेरी शिक्षा की सहायता की बहुत जरूरत है। वह अपना अभिभावक नहीं बन सकती।"

"तो आप चाहते क्या हैं?"

"जरा उसे यहां बुलाइए, मैं उससे बात करना चाहता हूं।"

"परन्तु मैंने कहा, वह आपसे बात करना नहीं चाहती।"

"नहीं, नहीं, बात करने में हानि नहीं है।"

"ओफ, आपने तो सिर खा डाला। मैं कहती हूं, आप चले जाइए।"

"मैं उसे ले जाने के लिए आया हूं।"

"उसे आप जबरदस्ती नहीं ले जा सकते।"

"मैं उसे समझाना चाहता हूं।"

"वह आपसे मिलने को तैयार नहीं।"

"मैं उसका पति हूं, श्रीमतीजी, वह मेरी पत्नी है, मेरा उसपर पूरा अधिकार है।"

"तो आप अदालत में जाइए, अपने अधिकार का दावा कीजिए।"

"छी, छी! श्रीमतीजी, आप महिलाओं की हितैपिका हैं, अ यह कभी पसन्द नहीं करेंगी।"

"जी, मैं यह भी तो पसन्द नहीं करती कि पुरुष स्त्रियों उनकी इच्छा के विरुद्ध अपनी आवश्यकताओं का गुलाम बनाएं।"

"कहां, हम तो उन्हें अपने घर-बार की मालकिन बनाक अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा, सब कुछ उन्हें सौंपकर निश्चिन्त रहते हैं जो कमाते हैं, उन्हींके हाथ पर धरते हैं, फिर प्रत्येक वस्तु और का के लिए उन्हींकी सहायता के भिखारी रहते हैं।"

"विचित्र प्रकृति के व्यक्ति हैं आप, अब मुझीसे उलझ रहे हैं! आप यह व्याख्यान किसी पत्र में छपवा दीजिएगा। आपकी युक्तियों का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है।"

"किन्तु श्रीमतीजी, आप एक पति और उसकी पत्नी के बीच

प्रकार असावधान मत बनिए।"

"अच्छा, तो आप मुझे धमकाना चाहते हैं ?"

[illegible]

नहीं। हमारी छोटी-सी गरीब दुनिया है, शान्त छोटा-सा घर एक छोटे-से घोंसले के समान। हम लोग न ऊधो के लेने में और

[illegible]

और प्रतिस्पर्धा हैं। इन सबके बीच आप लोगों का व्यक्तिगत जीवन एक गौण वस्तु बन जाता है। पर हम लोग इन झंझटों से क-साफ हैं। कृपया हम जैसे निरीह प्राणियों को अपनी इस जीवन की घुड़दौड़ में न घसीटिएगा। दया कीजिए। मेरी पत्नी मेरे साथ र दीजिए, मैं उसे समझा लूंगा, उससे निपट लूंगा।"

"अच्छा, तो आप चाहते हैं कि मैं चपरासी को बुलाऊं या पुलिस को फोन करूं ?"

"जी नहीं, मैं चाहता हूं कि आप भामादेवी को यहां बुला दें। उन्हें अपने घर ले जाऊं।"

"यह नहीं हो सकता।"

"यह बड़ा अन्याय है, भीमसेनजी !"

"आप जाते हैं, या चपरासी बुलाया जाए ?"

"चपरासी…"

"ओ चपरासी !"

देवीजी ने उच्च स्वर से पुकारा। अपनी टेढ़ी और घिनौनी मूछों में हंसता हुआ हरिया आ खड़ा हुआ। अर्ध-उद्दण्डता से बोला, "क्या करना होगा मेम साहब ?"

मेम साहब के कुछ कहने से प्रथम ही मास्टर साहब 'कुछ नहीं भाई, कुछ नहीं' कहते हुए अपना छाता उठा आफिस से बाहर हो

गद् । अगली बार श्रीमतीजी को नमस्ते करना भूले नहीं ।

"सुना तुमने ? वह सुबह आया था दफ्तर में ।"

"कौन ?"

"अरे वही बागड़बिल्ला मास्टर, तुम्हारा पति !"

"लेकिन तू तमीज से बात कर ।"

"ये लो, तुमसे ? तुम क्या मेरी अफसर हो ?"

"तो तूने समझा क्या है ?"

"तुम बीस पाती हो, मैं भी बीस पाता हूं, तुमसे कम नहीं ।"

"तो इसीसे तू मेरी बराबरी करेगा ?"

"कल इतना काम कर दिया, सारा सामान बाजार से ढोकर लाया और अब 'तू-तू' करके बातें करती हो ? ऐसी ही शाहजादी थीं, तो बीस रुपल्ली पर नौकरी कर और इस कोठरी में दिन काटने क्यों आई थीं, मारोगी ?"

"देख हरिया, ज्यादा बदतमीजी करेगा तो अच्छा नहीं होगा ।"

"क्या करोगी, मारोगी ?"

"मैं कहती हूं, तू अपनी हैसियत में रह ।"

"और तुम भी अपनी हैसियत में रहो । बहुत सहा, कल मैं मेम साहब से साफ कह दूंगा कि जिस-तिसकी गुलामी करना मेरा काम नहीं है । ऐसी तीन सौ साठ नौकरी मिल सकती हैं । कोई तुम्हारी तरह घर छोड़कर भगोड़ा नहीं हूं ; इज्जत रखता हूं ।"

भामा का सारा मान बिखर गया । ओह, अभी सिर्फ दो ही दिन तो बीते हैं । इसी बीच में इतना कष्ट, इतना अपमान, इतनी वेदना, इतना सूनापन ! हे ईश्वर, क्या अभी भी मैं अपने घर लौट नहीं सकती ? क्या वे मुझे माफ नहीं कर सकते ? अरे, मैं कितना उनसे तीखी रहती थी ! कभी सीधे मुंह बात भी नहीं की, सेवा तो एक ओर रही । आज दो-दो कौड़ी के नीच आदमी मेरे मुंह लगते हैं । मैं एक गरीब मास्टर की बीवी ही सही, फिर भी एक इज्जतदार औरत तो हूं ; किसीका दिया तो नहीं खाती ।

वे स्वयं लेने आए थे । कितना घबरा रहे होंगे ! प्रभा की क्या . ।

हालत होगी ! हाय, मैं उसे, पेट की बच्ची को, बुखार में तड़पती छोड़ आई ! एक बार उसकी ओर देखा तक भी नहीं । सच तो यह है कि मैंने न कभी अपने पति का ख्याल किया, न सन्तान का । मैं सदा अपने में असन्तुष्ट रही। अपने को देखा नहीं, सपने ही देखती रही।

वह उस नीच-कमीने नौकर से मुहजोरी करना रोक अपनी कोठरी में घुस गई। द्वार भीतर से बन्द कर लिए और फूट-फूटकर रोने लगी।

दिन बीते, रातें बीती, सप्ताह बीते।

महीने और साल बीते। तीन साल बीत गए। एक दिन दिवाली की रात को, मास्टर साहब अपने घर में दीये जला, प्रभा को खिला-पिला, बहुत-सी वेदना, बहुत-सी व्यथा हृदय में भरे बैठे थे। बालिका कह रही थी, "बाबूजी ! अम्मा कब आएगी ?"

"आएगी बेटी, आएगी !"

"तुम तो रोज यही कहते हो। तुम झूठ बोलते हो बाबूजी !"

"झूठ नहीं बेटी, आएगी।"

"तो वे मुझे छोड़कर चली क्यों गईं ?"

"......"

"आज दिवाली है बाबूजी !"

"हां बेटी।"

"तुमने कितनी चीजें बनाई थीं—पूरी, कचौरी, रायता, हलुआ…"

"हां, हां, बेटी, तुझे सब अच्छा लगा ?"

"हां, बाबूजी, तुम कितनी चीज लाए हो, खिलौने लाए हो—मैंने सब वहां सजाए हैं।"

'बड़ी अच्छी बिटिया है तू रानी।"

"यह सब मैं अम्मा को दिखलाऊंगी।"

"दिखाना।"

"देखकर वे हंसेंगी।"

"खूब हंसेंगी।"

"फिर मैं रूठ जाऊंगी।"

हो, नहीं, रानी बिटिया नहीं रूठा करती।"

"मां वे मुझे छोड़कर चली क्यों गईं ?"

मास्टरजी ने हाथ से मुंह पर आंसू गिराया और पुत्री की दृष्टि बचाकर दूसरा पोंछ डाला। इसी समय बाहर खिड़की के पास किसी के धम्म से गिरने की आवाज आई।

मास्टरजी ने चौंककर देखा, गुनगुनाकर कहा, "क्या गिरा ? क्या हुआ ?"

वे उठकर बाहर गए, सड़क पर दूर खम्भे पर टिमटिमाती लालटेन के प्रकाश में देखा, कोई काली-काली चीज खिड़की के पास पड़ी है। पास जाकर देखा, कोई स्त्री है। निकट से देखा, बेहोश है। मुंह पर लालटेन का प्रकाश डाला, मालूम हुआ भामा है।

मास्टर साहब एकदम व्यस्त हो उठे। उन्होने सहायता के लिए इधर-उधर देखा, कोई न था, सन्नाटा था। उन्होंने दोनों बांहों में भामा को उठाया और घर के भीतर ले आए। उसे चारपाई पर लिटा दिया।

बालिका ने भय-मिश्रित दृष्टि से मूर्छिता माता को देखा—कुछ समझ न सकी। उसने पिता की तरफ देखा।

"तेरी अम्मा आ गई बिटिया, बीमार है यह।" फिर भामा की नाक पर हाथ रखकर देखा और कहा, "उस कोने में दूध रखा है ; ला तो जरा।"···

दूध के दो-चार चम्मच कण्ठ में उतरने पर भामा ने आंखें खोलीं। एक बार उसने आंखें फाड़कर घर को देखा, पति को देखा, पुत्री को देखा और वह चीख मारकर फिर बेहोश हो गई।

मास्टर ने नब्ज देखी, कम्बल उसके ऊपर डाला। ध्यान से देखा, शरीर सूखकर कांटा हो गया है, चेहरे पर लाल-काले बड़े-बड़े दाग हैं, आंखें गढ़े में धंस गई हैं, सामने के दो दांत टूट गए हैं, आधे बाल सफेद हो गए हैं, कपड़े गन्दे, चीथड़े, पैर कीचड़ और गन्दगी में लथ-पथ और···और···और वे दोनों हाथों से माथा पकड़कर बैठ गए।

प्रभा ने भयभीत होकर कहा, "क्या हुआ बाबूजी ?"

"कुछ नहीं बिटिया !" उन्होंने गहरी सांस ली। भामा को

पत्ती तरह कम्बल उड़ा दिया।

इसी बीच भामा ने फिर आखें खोली। होश में आते ही वह उठने लगी। मास्टरजी ने बाधा देकर कहा, "उठो मत, प्रभा की मा, बहुत कमजोर हो। क्या थोड़ा दूध दू ?"

भामा जोर-जोर से रोने लगी। रोते-रोते हिचकियां बंध गई।

मास्टरजी ने घबराकर कहा, "यह क्या नादानी है ! सब ठीक हो जाएगा। सब ठीक···"

"पर मैं जाऊंगी, ठहर नहीं सकती।"

"भला यह भी कोई बात है, तुम्हारी हालत क्या है यह तो देखो !"

भामा ने दोनों हाथों से मुह ढक लिया। उसने कहा, "तुम क्या मेरा एक उपकार कर दोगे ? थोड़ा जहर मुझे दे दोगे ? मैं वहां सड़क पर जाकर खा लूंगी।"

"यह क्या बात करती हो, प्रभा की मा ! हौसला रखो, सब ठीक हो जाएगा।"

"हाय, मैं कैसे कहू ?"

"आखिर बात क्या है ?"

"यह पापिनी एक बच्चे की मा होनेवाली है, तुम नहीं जानते ?"

"जान गया, प्रभा की मां ! पर घबराओ मत ; सब ठीक हो जाएगा।"

"हाय मेरा घर !"

"अब इन बातों की इस समय चर्चा मत करो।"

"तुम क्या मुझे क्षमा कर दोगे ?"

"दुनिया में सब कुछ सहना पड़ता है, सब कुछ देखना पड़ता है।"

"अरे देवता, मैंने तुम्हें कभी नहीं पहचाना !"

"कुछ बात नहीं, कुछ बात नहीं। एक नींद तुम सो लो, प्रभा की मां।"

"आह मरी, आह पीर !"

अच्छा ! प्रभा बिटिया, तू जरा मां के पास बैठ, मैं

अभी आराम करो। प्रभा की मां, घबराना नहीं। पास ही एक दाई रहती है……एक मिनट आया, धीरज रखना।"

और वे [illegible] मास्टर साहब, जल्दी-जल्दी घर से निकलकर, दिवाली की जगमगाती हुई अनगिनत दीप-पंक्तियों को लगभग अनदेखा कर, तेजी से एक अंधेरी गली की ओर दौड़ चले।

"क्षमा-दान दो मालिक !"

"[illegible] हैं, प्रभा की मां।"

"अरे देवता, क्षमा-दान दो ! ओ पतितपावन, ओ अशरण-शरण, ओ दीनदयाल, क्षमा-दान दो !"

"तुम पागल हो गई हो, प्रभा की मां !"

"पागल हो जाऊंगी। तीन साल में दुनिया देख ली, दुनिया समझ डाली; पर इस अभागी ने तुम्हें न देखा, तुम्हें न समझा।"

"यह तुम फालतू बकबक करती रहोगी तो फिर ज्वर हो जाने का भय है। बिटिया प्रभा, अपनी मां को थोड़ा दूध तो दे।"

"मैं भैया को देखूंगी बाबूजी।"

भामा ने पुत्री को छाती से लगाकर कहा, "मेरी बच्ची, तू अपने बाप की बेटी है—इस पतित मां को छू दे जिससे वह पाप-मुक्त हो जाए।"

"नाहक बिटिया को परेशान मत करो, प्रभा की मां।"

"हाय, पर मैं तुम्हें मुंह कैसे दिखाऊंगी !"

"प्रभा की मां, दुनिया में सब कुछ होता है। तुमने इतना कष्ट पाया है, अब सब समझ गई हो। उन सब बातों को याद करने से क्या होगा ? जो होना था हुआ, अब आगे की सुध लो। हां, अब मुझे तनख्वाह साठ रुपये मिल रही है, प्रभा की मां, और ट्यूशन से भी तीस-चालीस पीट लाता हूं। और एक चीज देखो, प्रभा ने खुद पसन्द करके अपनी अम्मा के लिए खरीदी थी, उस दिवाली को।"

वे एक नवयुवक की भांति उत्साहित हो उठे, बक्स से एक रेशमी साड़ी निकाली और भामा के हाथ में देकर कहा, "तनिक देखो तो।"

भामा ने हाथ बढ़ाकर पति के चरण छुए। उसने [illegible] हा,

'मुझे साड़ी नहीं, गहना नहीं, सुख नहीं, सिर्फ तुम्हारी शुभ दृष्टि चाहिए। नारी-जीवन का तथ्य मैं समझ गई हूं, किन्तु अपना नारीत्व खोकर। वह घर की सम्राज्ञी है, और उसे खूब सावधानी से अपने घर को चारों ओर से बन्द करके अपने साम्राज्य का स्वच्छन्द उपयोग करना चाहिए, जिससे बाहर की वायु उसमें प्रविष्ट न हो, फिर वह साम्राज्य चाहे जैसा भी—लघु, तुच्छ, विपन्न, असहाय—क्यों न हो।"

मास्टर साहब ने कहा, "प्रभा की मा, तुम तो मुझसे भी ज्यादा पण्डिता हो गई! कैसी-कैसी बात सीख ली तुमने, प्रभा की मा!" वे ही ही करके हंसने लगे।

उनकी आंखों में अमल-धवल उज्ज्वल अश्रु-बिन्दु झलक रहे थे।

नवाब ननकू

सर्दी के दिन और सनीचर की रात, कल इतवार। न दफ्तर जाने की फिक्र, न किसी काम की चिन्ता। बस, बेफिक्री से खाना खाकर जो रजाई में घुसे तो अम्बरी तम्बाकू का कश खींचते-खींचते ही अण्टागफील हो गए।

मगर उस मीठी नींद में शुरू ही में विघ्न पड़ गया। नीचे कोई कर्कश स्वर में चिल्ला रहा था, "बाबू साहब, अजी बाबू साहब !"

उस वक्त आराम में यों खलल पड़ने से तबीयत झल्ला उठी। क्या मज़े की झपकी आई थी ! मैंने उठकर खिड़की से सिर निकालकर कहा, "कौन है भई इस वक्त ?"

"अजी हम हैं, नवाब साहब ! गजब करते हैं आप भाई साहब ! अभी लम्हा-भर हुआ है सूरज छिपे, और आपके लिए आधी रात हो गई। चीखते-चीखते गला फट गया। मुहल्ला-भर सिर पर उठा डाला।"

बड़ा गुस्सा आया उस नवाब के बच्चे पर। जी में आया, कच्चा ही चबा जाऊं। मगर ज़ब्त करके कहा, "कहिए नवाब साहब, इस वक्त कैसे ?"

"अजी दरवाज़ा तो खोलिए, या गली में खड़े ही खड़े राग अलापूं।"

मन ही मन ताव-पेंच खाता नीचे उतरा और कुण्डी खोली। नवाब साहब चुपचाप पीछे-पीछे जीना चढ़कर ऊपर आए। आते ही मसनद पर बेतकल्लुफी से उठंग गए। कहने लगे, "खुदा की मार इस सर्दी पर, हड्डियां तक ठण्डी पड़ गईं। मगर उस्ताद, खूब मज़े में आप मीठी नींद ले रहे थे।"

मैंने कहा, "आपके मारे कोई सोने पाए तब तो ! कहिए, इस वक्त कैसे तकलीफ की ?"

नवाब साहब ने बेतकल्लुफी से हँसकर कहा, "योंही, बहुत दिन से भाभी साहिबा के हाथ का पान नहीं खाया था, सोचा—पान भी खा आऊं और सलाम भी करना आऊं।"

गुस्सा तो इतना आ रहा था कि मर्दूद को धकेल दूं नीचे। मगर मैंने गुस्सा पीकर कहा, "पूरे नामाकूल हो तुम। कल इतवार था। कल यह सलाम की रस्म पूरी नहीं कर सकते थे, जो इस वक्त मेरे आराम में खलल डाला ?"

नवाब साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। जेब से सिगरेट का बक्स और दियासलाई निकालकर एक होंठों में दबाई, दूसरी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "खैर, सिगरेट तो पिओ और गुस्सा थूक दो। हां, चालीस रुपये मेरे हवाले करो और यह रखो संभालकर।"

उन्होंने बगल से एक पोटली निकालकर मेरे आगे सरका दी।

मैंने कहा, 'यह क्या बला है ? और इस वक्त रुपयों के बिना कौन कयामत बर्पा हो रही थी ?"

नवाब साहब को भी गुस्सा आ गया। कहने लगे, "कयामत नहीं बर्पा हो रही थी, तो मैं योंही झक मारने आया हूं इस वक्त ? हजरत, यह मेरी भी पीनक का वक्त था।"

"मगर इस वक्त रुपये का तुम क्या करोगे ?"

"फेंक दूंगा सड़क पर, तुमसे मतलब ?"

"रुपये नहीं हैं।"

"रुपये न होने की खूब कही, बुलाऊं भाभी को ?"

"भाभी तुम्हारी क्या तोप से उड़ा देंगी ! बुलाओ चाहे जिसका, रुपये नहीं हैं।"

"समझ गया, बेहयाई पर कमर कसे हुए हो। लाओ, चुपके से रुपये दे दो। अभी मुझे सदर तक दौड़ना होगा।"

"सदर तक क्यों ?"

"एक बोतल व्हिस्की और गजक लेने, और क्यों !"

"अच्छा, तो हजरत को शराब के लिए रुपये चाहिए !"

"जी हां, शराब के लिए, और कबाब के लिए भी। निकालो जल्दी से।"

"कह तो दिया, रुपये नहीं हैं।"

"[illegible] तो कह दिया, मगर हमने तो सुना ही नहीं।"

"नहीं सुना तो जहन्नुम में जाओ।"

"कहीं भी हम जाएं तुम्हारी बला से, लाओ तुम रुपये दो।"

"रुपये नहीं देगा, अब तुम [illegible] हो यहां से नवाब।"

"[illegible]। रुपये तो [illegible] अभी लगा तुमने।"

"[illegible] चाहिए मुझको ?"

"कर्ज ही तो मांगता हूं।"

"मैं कर्ज नहीं देता।"

"देखता हूं कैसे नहीं दोगे, वरना तो भाभी को भी अपनी हिमायत पर।" नवाब ने गुस्से में आस्तीन चढ़ानी शुरू की।

मुझे बुरी तरह हंसी आ गई। कहा, "क्या मारपीट भी करने पर आमादा हो ?"

"मारपीट ! तुम मारपीट की कहते हो ? मैं तुम्हें गोली न मार दूं तो नवाब ननकू नहीं।"

मैंने हंसकर कहा, "गोली मार दोगे तो फिर रुपया कहां से वसूल करोगे नवाब साहब ?"

"बस, इसी बात को सोचकर तो रह जाता हूं, निकालो रुपये !"

"लेकिन नवाब, तुम तो कभी नहीं पीते थे, आज यह क्या बात है ?"

"तो क्या मैं अपने लिए मांगता हूं ? मैंने कभी पी है ?"

"फिर किसके लिए ?"

"राजा साहब के लिए।"

"अच्छा—यह बात है ! अब समझा ! कोई नई चिड़िया आई है क्या ?"

"राजेश्वरी आई है बनारस से।"

"तो तुम क्यों उस शराबी के लिए झख मारते फिरते हो ?"

"तब कौन झख मारे ? तुम चाहते हो, राजा साहब खुद तुम्हारे

खाने पर आकर चालीस-चालीस रुपल्ली के लिए ज़लील होते हो ?"

"वे कुछ भी करें, तुम्हें क्या ? जो जैसा करेगा, भोगेगा। जिन्होंने बापों की ज़मीन-जायदाद जर-जवाहरात सब शराब और रण्डीबाज़ी में फूंक दिए, तुम उनसे क्यों हमदर्दी रखते हो ?"

"क्या मैं हमदर्दी करता हूं ?"

"तब !"

"मैं मुहब्बत करता हूं उनसे भाई, उनकी इज़्ज़त करता हूं।"

"किसलिए—आखिर सुनूं तो ?"

"किसलिए ! सुनो, पहले तो वे मेरे बड़े भाई, दूसरे ऐसे दाना, ऐसे प्रेमी, ऐसे बात के धनी, ऐसे दिलवाले कि दुनिया में चिराग लेकर ढूंढो तो मिल नहीं सकते।"

"शराबी और रण्डीबाज़ भी क्यों नहीं कहते ?"

"वह तुम कहो, वे शराब पीते हैं और रण्डियों में आशनाई करते हैं—इसमें किसी का क्या लेते हैं ? उन्होंने अपनी लाखों की जायदाद उन्हें दे दी जिन्हें उन्होंने प्यार किया। आज उनका हाथ खाली है मगर दिल बादशाह है। वे जीते-जी बादशाह रहेंगे। मैं उन्हें पसन्द करता हूं, प्यार करता हूं, इज़्ज़त करता हूं। मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता कि वे दुनिया के आगे हाथ फैलाएं।"

"और तुम उनके लिए भीख मांगते फिरते हो।"

"किससे मैंने भीख मांगी है, कहो तो ?" नवाब ने तैश में आकर कहा।

"यह अभी तुम चालीस रुपये मांग रहे हो।"

"और यह क्या है ?"

नवाब ने सामने की पोटली की ओर इशारा किया।

उसे तो मैं भूल ही गया था। मैंने देखा—बहुमूल्य हीरे के काम का कीमती गहना है।

"तब मैंने कहा, 'बेवकूफ यार, तो यहीं रखके दो सौ ले लो। तुमसे तो मैं चालीस ही मांग रहा हूं।"

"गहना क्या राजा साहब ने दिया है ?"

"[illegible] ? अभी कल का है। [illegible]

मुंह बनाकर राजा साहब ने कहा, 'नवाब, हाथ में इस वक्त कुछ नहीं है, सालगिरह के लिए कुछ खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दो और उनकी शर्म से कहती थीं और लाचारी से भीख मांगी थीं। बस इतनी ही सी बात है।"

"अच्छा, तुम सुबह से घर आए। यह लहंगा उठाया और यहां आ धमके।"

"जी हां, और तुम्हारी नींद हराम कर दी। बहुत हुआ अब, बस अब लाओ रुपये दो।"

"मैंने चुपके से दस-दस के चार नोट नवाब के हाथ पर रख दिए। मेरी आंखों में आंसू आ गए, और मैंने यह लहंगा उसी तरह लपेटकर नवाब की ओर बढ़ाते हुए कहा, "इसे लेते जाओ।"

नवाब ने आपे से बाहर होकर चारों नोट फेंक दिए। लाल होकर कहा, "अच्छा, तो इस तरह मुझे भीख देने की जुर्रत करते हैं?"

"नहीं भाई, ऐसा क्यों सोचते हो! मगर यह लहंगा मैं नहीं रख सकता।"

"तो तुम्हारे रुपये भी नवाब नहीं ले सकता! आज राजा कामेश्वरप्रसादसिंह खाली हाथ है, और नवाब ननकू अपनी अम्मीजान का लहंगा गिरवी रखने पर लाचार है। मगर आप यह मत भूलिए कि वे दोनों सलीमपुर के राजा महाराज नन्दनसिंह के नुतफे से पैदा हुए हैं, जो तीन बार सोने से तुले थे, और जिन्होंने ग्यारह हाथी ब्राह्मणों को दान दिए थे; जिनकी दी हुई जागीर को सैकड़ों शरीफ-जादों की आल-औलाद आज भोग रही है; इलाके-भर में जिनके पेशाब से चिराग जलते थे।"

मैंने खड़े होकर खुशामद करते हुए कहा, "वह सब ठीक है नवाब साहब, मगर ये रुपये तुम मेरी तरफ से राजा साहब को नजर करना।"

हरगिज नहीं, राजा साहब कभी किसीकी नजर कबूल नहीं करते। तुम यह लहंगा गिरवी रखकर चालीस रुपये देते हो तो दो।"

"लाचार मैंने हामी भर ली। लहंगे को उसी तरह लपेटकर रख लिया और नवाब रुपये जेब में रखकर उठ खड़े हुए।

मैंने कहा, "यह क्या नवाब, भाभी का पान बिना खाए और सलाम किए चले जाओगे ?"

"हरगिज नहीं !" नवाब ने बैठते हुए कहा, "बुलाओ तो है।"

बातें हमेशा नापसन्द करती थीं। उन्होंने आकर कहा, "इस वक्त ऐसी जल्दी क्यों हुई है ?"

"यह इन नवाब साहब से पूछो।"

"यह कहें।"

दो बीड़े बढ़िया पान ले आइए।"

पत्नी चली गई और एक तश्तरी में कई बीड़े पान लेकर लौटीं। उनमें से दो बीड़े उठाकर नवाब ने हाथ में लिए, अदब से मेरी पत्नी के सामने खड़े हुए और जमीन तक झुककर कहा, 'सलाम बड़ी भाभी, आपका यह गुलाम नवाब ननकू आपको सलाम करता है। आपकी दुआ की इल्तजा रखता है।"

पत्नी मुस्कराईं। उन्होंने कुछ झेंपते हुआ कहा, "कभी बच्चों को तो भेजते नहीं नवाब साहब ! एक बार भेजो।"

"जो हुक्म बड़ी भाभी, सलाम।"

नवाब साहब ने और एक सलाम झुकाई और चले गए।

मेरी नींद बहुत रात तक गायब रही। मैं अन्दाजा न लगा सका कि यह व्यक्ति संसार के सब मनुष्यों से कितना ऊंचा है।

कमरे में एक ओर अंगीठी जल रही थी। राजा साहब पलंग पर लेटे थे और एक खिदमतगार धीरे-धीरे उनके पांव सहला रहा था। पजेसरी नीचे फर्श पर बैठी छालिया काट रही थी। चांदी का पानदान सामने खुला रखा था। राजा साहब गंगा-जमुनी काम की

गुड़गुड़ी पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे थे। और धीरे-धीरे राजेश्वरी से बातें कर रहे थे।

राजेश्वरी भी उस [illegible] को पार कर चुकी थी। बदन उसका कुछ भारी हो गया था और माथे पर की लटों में चांदी की चमक अपनी बहार दिखा रही थी। फिर भी उसकी पानीदार आंखें और मृदु मुस्कान में अभी भी मोह का नशा भरा था।

राजेश्वरी ने कहा, "सरकार ने भी नजरें फेर लीं, मुद्दत हुई एक पैगाम तक न भेजा। सुनती रहती थी, हुजूर के दुश्मनों की तबीयत खराब रहती है। आखिर जी न माना, बेहया बनकर चली आई।"

"मुझे निहाल कर दिया तुमने इस वक्त आकर राजेश्वरी, दिल बाग-बाग हो गया। क्या कहूं, बहुत याद करता हूं तुम्हें, मगर…"

"हुजूर की नजरे-इनायत पर मैंने हमेशा फख्र किया है; और मरने दम तक करूंगी।"

"तुम जिओ राजेश्वरी, ईश्वर तुम्हें खुश रखे। यह मूजी बीमारी—क्या कहूं, अब तो हिलने-डुलने से भी लाचार हो गया हूं। पर यह सब उस भगवान की दया है। फिर मुझे अपनी लाचारी का क्या गम है, जब तुम दुनिया की तमाम खुशी लेकर यहां आ जाती हो।"

राजेश्वरी ने चार बीड़े पान बनाकर राजा साहब को अदब से पेश किए। राजा साहब ने मुस्कराकर पान लेकर मुंह में रखे।

खिदमतगार ने आकर अर्ज की, "हुजूर, कुंवर साहब सलाम के लिए हाजिर हुए हैं।"

"आएं वे।" राजा साहब ने धीरे से कहा।

कुंवर साहब ने झुककर राजा साहब को सलाम किया और पैताने की ओर अदब से खड़े हो गए।

राजा साहब ने कहा, "चाची को सलाम नहीं किया बेटे?"

कुंवर साहब ने आगे बढ़कर राजेश्वरी को सलाम किया, और दो कदम पीछे हट गए।

राजेश्वरी खड़ी हुई। आगे बढ़कर कुंवर साहब के पास पहुंची, उनके मुंह पर प्यार से हाथ फेरा, और दो अशर्फियां निकालकर

उनकी मुट्ठी में जबरन थमा दीं।

कुंवर साहब ने पिता की ओर देखा।

राजा साहब ने कहा, "ले लो, और चाची को फिर मुकर्रर सलाम करो।"

कुंवर साहब ने झुककर फिर सलाम किया। राजेश्वरी ने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने इशारा किया और कुंवर साहब चले गए।

[illegible]

औलाद पर बरकत देगा, जिसने अपनी ज़िन्दगी में सबको दिया ही है, लिया किसीसे भी कुछ नहीं।"

राजा साहब ने हाथ बढ़ाकर राजेश्वरी का हाथ पकड़ लिया। बहुत देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। दो पुराने किन्तु पानीदार दिल मन ही मन एक-दूसरे को यत्न से संचित स्नेह से अभिषिक्त करते रहे।

आखिर में राजा साहब ने एक ठण्डी सांस भरी और गुड़गुड़ी में एक कश लगाया।

नवाब ननकू हांफते हुए आ बरामद हुए। उनकी नाक पर की ऐनक नाक की नोक पर खिसक आई थी। आते ही उन्होंने खिदमतगार को एक डांट दी, "अरे कम्बख्त बदनसीबे, अंगीठी में और कोयले क्यों नहीं डाले, वह बुझ रही है। नवाब साहब जब तक हुक्म न दें, ये नवाब के बच्चे कोई काम नहीं करेंगे! राजा साहब का डेरा हो गया तो याद रख, कच्चा चबा जाऊंगा। उठ जल्दी, कोयले डाल!"

खिदमतगार चुपके से उठ गया। नवाब ने ही-ही हंसते हुए कहा, "देखा राजेश्वरी भाभी, ये खिदमतगार साले नवाब ननकू के आगे बन्दर की तरह नाचते हैं। मगर मुंह पर कहता हूं—बिगाड़ दिया है राजा साहब ने। नौकरों को बहुत मुंह लगाना भी तो अच्छा नहीं।"

"लेकिन नवाब, उन गरीबों को छः-छः महीने तनख्वाह नहीं मिलती है, बेचारे मुफ्लिसी के मारे पड़े हैं।"

"तो इसमें क्या? उनके बाप-दादों ने इतना खाया है कि सात पीढ़ी के लिए काफी है।"

"मगर उन्होंने खिदमत भी तो की है।"

"तो खिलअतें भी पा गए हैं।"

"अच्छा देखूं तो, राजेश्वरी के लिए कौन चीज लाए हो?"

"देखिए, और दाद दीजिए नवाब को।"

नवाब ने [illegible] निकाली; और भी बहुत-सा सामान।

"अरे, यह इतनी खटपट किसलिए की नवाब साहब?" राजेश्वरी ने कहा।

"जी, जैसे आप निठल्ली के बराबर तो आती ही हैं? फिर आईं कितने दिन बाद हैं राजेश्वरी भाभी! जानती हैं, राजा साहब कितना याद करते हैं! जब राजेश्वरी जबान पर चढ़ती है, आंखें गीली हो जाती हैं। अम्मीजान कहती थीं, बड़े महाराज का भी यही हाल था, जरा-सी बात पर दिल भारी कर लेते थे।"

"वे देवता थे नवाब साहब!"

"और ये?"

"ये, इन्हें पहचाना किसने है अभी।"

"दुनिया ऐसों को कभी न पहचान पाएगी।"

खिदमतगार अंगीठी टंच करके रख गया। नवाब साहब ने खुश होकर कहा, "यह बात है रामधन! मगर देखो, मैंने तुम्हें गाली एक दी है—और ये दो रुपये इनाम देता हूं।"

नवाब ने दो रुपये निकालकर रामधन की ओर बढ़ा दिए।

रामधन ने नवाब के पैर छूकर कहा, "हुजूर, आपकी गालियां खाकर ही तो जी रहा हूं। रुपया-पैसा सरकार का दिया बहुत है।"

"मगर यह भी तो लो, महरिया को एक बढ़िया-सी चुनरी ला देना।"

"वह उस दिन हवेली गई थी सरकार, तो बेगम साहिबा ने खाने

ग-क्या लाद दिया था, गट्ठर भर लाई थी।"

नवाब ने वेश में आकर कहा, "अबे रुपये लेता है या मतिख अटा है, क्या लगाऊं घोल ?"

रामधन ने रुपये लेकर उन्हें और राजा साहब को सलाम किया।

राजा साहब ने हंसकर कहा, "देखा राजेश्वरी, नवाब का इनाम ने का तरीका !"

नवाब खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने कहा, "झपाके से तश्त-र्या ला, गिलास ला, पेग ला ; जल्दी कर।"

क्षण-भर ही में सब सरंजाम जुट गया। राजा साहब तकिये के हारे उठंग गए। शराब का दौर शुरू हुआ। नवाब ने गिलास में ोडा और शराब भरकर कहा, "राजेश्वरी, राजा साहब की तन्दुरुस्ती ौर बरकत के लिए।" तीनों ने हंसती हुई आंखें मिलाईं और शराब ी चुस्कियां लेने लगे।

राजेश्वरी ने कहा, "इस सर्दी में बहुत दौड़-धूप की नवाब ाहब !"

"मान गई न आप नवाब को ! लीजिए इसी बात पर दूसरा ग।"

"नहीं नवाब, मैं तो कभी पीती ही नहीं। मुद्दत हुई, जब से हाराज की तबीयत नासाज रहने लगी। आज मुद्दत बाद मुंह से गा रही हूं।"

"तो पूरी कसर निकालिए राजेश्वरी भाभी ! नवाब को इस ही रात में उस साले ठेकेदार से बहुत मगजपच्ची करनी पड़ी। ला वही रद्दी माल पटोल रहा था। मैंने कहा—वह बोतल निकाल ो उस दिन हमारे सरकार की खिदमत में गई थी। और ये कबाब, च कहता हूं राजेश्वरी भाभी, कस्बे में दूसरा नहीं बना सकता।"

"वाकई बहुत अच्छे बने हैं, मगर आप तो खाते ही नहीं नवाब ाहब !"

"वाह, खिलाने में जो मजा है वह खाने में कहां ! देखा था म्मी को, यही एक शौक उन्हें मरते दम तक रहा—एक से एक ढ़कर चीजें बनाना और खिलाना।"

"मुझे याद है नवाब, मैं जब बहुत बच्ची थी, आपा के साथ आती थी, थोड़ी भी न पी—आंख से जाती थी। कितना पिलाती थीं, क्या कहूं!"

"मगर अब अम्मी तो हैं नहीं, नवाब उनका नालायक लड़का है, उसने विरासत में अम्मी की यह आदत पाई है। लीजिए, यह पैग तो पीना होगा।"

"मगर इधर तो देखो नवाब, महाराज ने सिर्फ होंठों से छूकर गिलास रख दिया है, पी कहां?"

"क्या कहूं राजेश्वरी! तकलीफ देती है, पी नहीं सकता। डाक्टरों ने भी मना कर दिया है। मगर तुम पिओ राजेश्वरी, आज मैं बहुत खुश हूं। लाओ नवाब, राजेश्वरी को एक पैग मैं भरकर दूं।"

"और हुजूर, एक नवाब को भी।"

"अरे, यह कब से? तुम तो कभी पीते ही नहीं थे।"

"आज ही से अभी-अभी एक पैग पिया है मैंने।"

राजा साहब ने दो पैग भरकर तैयार किए। गिलास में भरकर कहा, "लो राजेश्वरी, और तुम भी नवाब।"

"वाह हुजूर, यों नहीं, जरा-सा जूठा कर दीजिए कि यह जाम पाक तबर्रुक हो जाए।" नवाब ने कहा।

राजा साहब हंस दिए, उन्होंने हाथ पकड़कर नवाब को खींचकर छाती से लगा लिया। फिर आंखों में आंसू भरकर कहा, "ननकू, मेरे प्यारे भाई! हमारी मां दो थीं, मगर वालिद एक थे। फिर भी तुम मेरे सगे भाई हो, ऐसे, जैसा दूसरा मिलना मुश्किल है। और ननकू, मैं सिर्फ तुम्हारे प्यार की बदौलत ही जी रहा हूं।" उन्होंने प्याला होंठों से छुआकर नवाब को दिया और नवाब गटागट पी गए। उनकी आंखों में आंसू और होंठों में हंसी बिखर रही थी।

नवाब ने कहा, "राजेश्वरी भाभी, बहुत दिन से सूने-सूने दिन जा रहे थे। आज तो कुछ जंच जाए।"

"मगर नवाब, गले में अब सुर तो रहे ही नहीं।"

"बेसुरा ही सही।"

महाराज ने हंसकर कहा, "राजेश्वरी, [illegible] नवाब को बहुत

मेहनत करनी पड़ी है, उसकी बात रख लो।"

"जो हुक्म, मगर मेरी एक अर्ज़ है।"

"कहो।"

"नवाब साहब को जो तबर्रुक बख्शा गया है, वही लौंडी को भी इनायत हो।"

"ओह, अच्छा ठहरो, सब्र करो।"

नवाब ने इशारा किया। रामधन तबला, हारमोनियम ले आया।

हारमोनियम नवाब खींच बैठे और रामधन ने चारों ओर तकिये लगाकर राजा साहब को आराम से बिठाकर तबले उनकी गोद में, रज़ाई में लपेटकर रख दिए। अम्बरी तम्बाकू की एक नई चिलम चढ़ा दी। तबले पर एक हल्की चोट देते हुए राजा साहब ने कहा, "राजेश्वरी, अभी उंगलियों पर लकवे का असर नहीं है। काम दे रही हैं।"

* * *

राजेश्वरी की प्रौढ़ स्वर-लहरी ने वातावरण में एक प्यास उत्पन्न कर दी। यह वैसी न थी, जैसी वासना और यौवन की आंधी के झोंकों में मिली रहती है। यहां तीन प्रेमी, विश्वस्त, पुराने और ऊंचे हृदय, अपने भौतिक आनन्द की चरम अनुभूति ले रहे थे। वे लोग आप ही अपनी कला पर मुग्ध थे; आप ही अपनी तारीफ़ कर रहे थे; आप ही अपने में पूर्ण थे।

"तो हुज़ूर, अब कब?"

"जब मर्ज़ी हो राजेश्वरी।"

"तबीयत होती है कि कुछ दिन कदमों में रहूं।"

"मैं भी चाहता तो बहुत हूं राजेश्वरी, पर तुम्हारी तकलीफ़ का खयाल करके चुप रह जाता हूं। देखती हो, मकान कितना गन्दा है, सिर्फ़ दो ही खिदमतगार हैं। इन्हें भी महीनों तनख्वाह नहीं मिलती,

पर पड़ गए हैं। तुम इन तकलीफों की आदी नहीं हो।"

"मगर हुजूर, क्या मैं उन खिदमतगारों से भी गई-बीती हूं?"

"नहीं, नहीं, राजेश्वरी, मैं तुम्हें जानता हूं।"

"मगर हुजूर, अपने को नहीं जानते। मेरी वह कोठी, जायदाद नौकर-चाकर सब किसकी बदौलत हैं? हुजूर ने जो पान खाकर थूक दिया, उसीकी बदौलत। अब हुजूर गरीब हो गए तो पुराने खादिम क्या बेगाने हो जाएंगे?"

राजेश्वरी की आंखें भर आईं। कुछ ठहरकर उसने कहा, "शर्म के मारे मैं खिदमतगारों को नहीं लाई, और इस टुटहे इक्के पर आई हूं। मैं कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि मालिक जब इस हालत में हों, उनकी बांदियां ठाठ दिखाएं!"

"नहीं, नहीं, राजेश्वरी, यह बात नहीं। पर मैं अपनी आंखों से तुम्हें तकलीफ पाते देख नहीं सकता। कभी देखा ही नहीं।"

"इसीसे हुजूर, मुझे अभी जबरदस्ती भेज रहे हैं, मेरी नहीं सुनते!"

"इसीसे राजेश्वरी!"

"और इस लौंडी का कभी कोई तोहफा भी नहीं कबूल करते। उस बार जब जनाना महल नीलाम हो रहा था, मैंने कितनी आरजू की थी कि मुझे रुपया चुकता कर लेने दीजिए। पुरखों की यादगार है। सब रियासत गई। अगर रहने का महल···आप मेरे आंसुओं से भी तो नहीं पसीजे हुजूर, आप बड़े बेदर्द हैं!"

राजेश्वरी फूटकर रो पड़ी और राजा साहब के सीने पर गिर गई। राजा साहब उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर कहा, "तुम भी बच्ची हो गई हो राजेश्वरी। अब भला वह उतना बड़ा महल मैं क्या करता? अकेला पंछी। फिर उसमें अब खुल गया जनाना अस्पताल। कितने लोगों का भला होता है! बोर्ड ने खामखाह मेरा नाम अस्पताल के साथ जोड़ दिया है।"

"जी हां खामखाह ही! वह लाखों की स्टेट जो कौड़ियों में दे दी! और अब हुजूर इस किराये के मकान में बहुत खुश हैं?"

"बहुत खुश, राजेश्वरी, बहुत खुश! न ऊधो का लेन न माधा

ा देन। लेकिन बहुत देर हो रही है, राजेश्वरी ! गाड़ी पकड़नी है, स्टेशन काफी दूर है, और रास्ता बड़ा खराब है। तुम्हारा इक्का आ या।"

"धक्के दीजिए आप मुझे, बुढ़िया जो हो गई हूं, अब आप यही तो करेंगे।"

राजा साहब असयत होकर पलंग से आधे उठ गए। राजेश्वरी को खींचकर छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसके गंगा-जमुनी बालों की लटों को उंगलियों में लपेटते हुए कहा, "बुड्ढा-बुढ़िया कौन होता है राजेश्वरी ? मेरी आंखों में तुम वही, नये केले के पत्ते से रूपवाली, अछूते यौवन और अपार प्यारवाली, मेरे दिल और दिमाग की तरावट, राजेश्वरी हो। तुम या मैं भले ही बूढ़े हो जाएं, लेकिन इन *आंखों में झांककर जिसने तुम्हें देखा है वह बूढ़ा नहीं,* और तुम्हारे भीतर बैठकर जो एक-एक मोती तुम्हारी आंखों में सजाता जा रहा है, वह भी बूढ़ा नहीं।"

राजेश्वरी धीरे से राजा साहब के मुंह के बिलकुल पास फर्श पर बैठ गई। रामधन अम्बरी तम्बाकू चढ़ाकर गुड़गुड़ी रख गया। राजा साहब चुपचाप तम्बाकू पीने लगे। तम्बाकू की खुशबू ने कमरे को मस्त कर दिया।

राजेश्वरी ने कहा, "हुजूर वादा-वफा हो।"

राजा साहब ने भौंहें सिकोड़कर राजेश्वरी की ओर देखकर कहा, "वादा ?"

"जी।"

"क्या···?"

"तज़र्रुक।"

"ओह, भूली नहीं राजेश्वरी !"

"भूलने की एक कही ! कल से आस लगाए हूं। नवाब के सामने फिर नहीं कहा।"

राजा साहब कुछ देर गुड़गुड़ी पीते रहे। फिर कहा, "ज़रा और पास आओ तो राजेश्वरी।"

राजेश्वरी बिलकुल राजा साहब के मुंह के पास खिसक गई।

राजा साहब ने गुड़गुड़ी की नै को घुमाकर उसके होंठों में लगाकर कहा, "एक कश खींचो तो राजेश्वरी।"

"लेकिन, लेकिन हुज़ूर…"

"मेरी खुशी होगी, खींचो एक कश।"

राजा साहब की आंखों में प्यार का सारा ही रस उमड़ आया। राजेश्वरी ने आनन्द-विभोर होकर गुड़गुड़ी से कश खींचा।

"खुश हुई अब राजेश्वरी?"

"ओह हुज़ूर, कहीं खुशी से मेरी छाती न फट जाए। हुज़ूर ने गुड़गुड़ी खास इनायत करके मेरी सात पीढ़ियों को तार दिया।"

राजा साहब ने खिदमतगार से कहा, "रामधन, चिलम ठण्डी कर दे और गुड़गुड़ी उस अखबार में लपेटकर इक्के में रख आ।"

राजेश्वरी का मुंह सूख गया। उसने कहा, "यह आप क्या कर रहे हैं?"

"मेरा दिल बाग-बाग है, तुम दुखो मत।"

"मगर हुज़ूर…"

"मैं हुक्म देता हूं—मत बोलो।"

राजेश्वरी का सिर नीचे को झुक गया। उसने खड़ी होकर झुककर राजा साहब को सलाम किया और रोती हुई चली गई। राजा साहब चित अपने पलंग पर पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल-निर्वाक् पड़े रहे।

"यह क्या तमाशा है, रामधन! महाराज मिट्टी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू पी रहे हैं! गुड़गुड़ी खास क्या हुई?" नवाब ने कमरे में आते ही हैरान होकर पूछा।

रामधन चुपचाप खड़ा रहा। उसे बाहर जाने का इशारा करते हुए राजा साहब ने मुस्कराकर कहा, "यहां आओ नवाब, मैं बताता हूं।"

नवाब ननकू एकदम पलंग के पास जा खड़े हुए। राजा साहब ने हंसकर कहा, "बैठो।"

"मगर मैं पूछता हूं, गुड़गुड़ी खास क्या हुई?"

"देखो तो कहूं।"

नवाब ने डरकर कहा, "कहिए।"

राजा साहब ने रजाई से हाथ बाहर निकालकर नवाब का हाथ पकड़ लिया। कहा, "नाराज न हो नवाब, राजेश्वरी को दे दी।"

"क्या उसने मांगी थी ?"

"नहीं, मगर उसे खाली [illegible] जाने देता ! तुम देखते ही [illegible] बची थी।"

[illegible] र बोले, "मगर आप मिट्टी [illegible] गुडगुड़ी लाता हूं।"

"कहां से ?"

"घर से ?"

"कहां पाई ?"

"अम्मीजान की है, बड़े महाराज ने बख्श दी थी। मेरे पास यह अब तक पाक धरोहर थी। अब आज काम आएगी।"

राजा साहब ने कहा, "बड़े महाराज ने जो चीज बख्श दी, वह मैं वापस कैसे ले सकता हूं!"

"तो अब हुजूर, नवाब को जीने न देंगे।"

राजा साहब हंस दिए। फिर मीठे स्वर में बोले, "खैर, इस अम्र पर पीछे गौर कर लिया जाएगा। पर मिट्टी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू बहुत मीठा लगता है, नवाब! हां, यह कहो, रात सामान कैसे जुटाया था? मैं जानता हूं, तुम्हारे पास छदाम न था।"

"जुट गया योंही। नवाब हूं, कोई अदना आदमी नहीं।"

"मगर सच-सच कहो।"

"झूठ से क्या फायदा! चालीस रुपये बाबू साहब से लिए थे।"

"बड़ी तकलीफ दी उन्हें। अब ये रुपये दिए कैसे जाएं ?"

"जल्दी नहीं है सरकार, रहन पर लाया हूं, योंही नहीं। जब हाथ खुला होगा, दे देंगे।"

"रहन क्या रखा ?"

"एक अदद था।"

"क्या अदद, बताओ।"

"अब आप भी भांजी करते हैं, आपको मतलब ?"

"तुम्हें मेरी कसम, नवाब ।"

"ओह !"

"कहो, कहो ।"

"अम्मी का गहना था ।"

राजा साहब निढाल पड़ गए । उनकी आंखों की दोनों कोरों से आंसू बह रहे थे, और उनका कांपता हुआ हाथ नवाब के दोनों हाथों में था ।

सूनी

उसका नाम मत पूछिए। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आंखों से दूर करने को पागल हुआ फिर रहा हू, पर वह नाम और वह सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हू, वह निडर है; मैं रोता हू, वह हसता है, मैं मर जाऊगा, वह अमर है।

मेरी-उसकी कभी की जान-पहचान न थी। दिल्ली मे हमारी गुप्त सभा थी। सब दल के आदमी आए थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था। वह मेरे पास ही खड़ा एक कुत्ते के पिल्ले से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज गम्भीर स्वर मे धीरे से कहा, "इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

म—

कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मेरे मुख पर डालकर कहा, "काश! मैं इसका सहोदर भाई होता!" मैं ठठाकर हस पड़ा। वह मुस्कराकर रह गया। कुछ बातें हुईं। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन पर दिन बीतते गए। अछूते प्यार की धाराएं दोनों हृदयों मे उमड़कर एकधार हो गईं। सरल, अकपट व्यवहार पर दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध होते गए। वह मुझे अपने गांव ले गया, किसी तरह न माना। गांव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गांव के ज़मींदार का बेटा था, इकलौता बेटा। हृदय और सूरत का एक-सा।

उसकी माँ ने दो दिन में ही मुझे बेटा कहना शुरू कर दिया। अपने जीवन के दिनों में मैंने पहली बार इन माता का स्नेह पाया; फिर चला आया। अब तो बिना उनके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटके रहे। एक दिन उन्माद प्रेम के आवेश में उसने कहा था, 'कभी अगर भगवान से जो तुम दोनों में से एक स्त्री बन जाए, तो मैं तो तुमसे ब्याह ही कर लूं।'

नायक से मैंने कई बार पूछा, "क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा था ?" वे सदा यही कहते, "समय पर जानोगे।" गुप्त सभा की भयंकर गंभीरता सब लोग नहीं जान सकते ! नायक मूर्तिमान भयंकर गंभीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पॉकेट में अब भी सुरक्षित है। पर किसी को दिखलाऊंगा नहीं। उसे देखकर दो सांस मन से ले लेता हूं, आंसू बहाकर हल्का हो जाता हूं। पुराने रोगी को जैसे कोई दवा खुराक बन जाती है, मेरी वेदना को भी यह चिट्ठी खुराक बन गई है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था, नायक ने बुलाया। मैं सामने सरल स्वभाव से खड़ा हो गया। बारहों प्रधान हाजिर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तस्वीर खींच रहा था। मैं एक ही मिनट में गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्मभेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रों में गड़ गई, जैसे तप्त लोह के तीर आंख में घुस गए हों। मैं पलक मारना भूल गया, मानो नेत्रों में आग लग गई हो। पांच मिनट बीत गए। नायक ने गम्भीर वाणी से कहा, "सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?"

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठाकर उसे सिर पर चढ़ा लिया।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण-भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण-भर में छः नली

रिवाल्वर को मेज पर रख दिया।

यह छः अक्षरों का शब्द उस रिवाल्वर की छहों गोलियों की तरह मस्तिष्क में घुस गया ; पर मैं कम्पित न हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने रिवाल्वर उठाकर छाती पर रखा और उस स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम पर इतना भरोसा उसे था। देखते ही लिपट गया। घर गए, चार दिन रहे। वह क्या करता है, क्या पढ़ता है, मैं देख-सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न हो गया था, आत्मा दृढ़ थी, हृदय धड़क रहा था ; पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जलपान करके हम स्टेशन की ओर चले। तांगा नहीं लिया, जंगल में घूमने जाने का विचार था। शास्त्रों की बढ़-चढ़कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती में वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और [illegible] पसीने बह चले। मैंने कहा, "चलो, कहीं छाँह में बैठें।" घनी कुंज सामने थी, वहीं गए। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकालकर उसने कहा, "सिर्फ दो ही पके थे, घर के बगीचे के हैं। यहीं बैठकर खाने के लिए लाया था ; एक तुम्हारा एक मेरा।" मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह अपना अमरूद खा चुका था। उसका ध्यान उसीके स्वाद में था। मैंने धीरे से रिवाल्वर निकाला, घोड़ा चढ़ाया और कम्पित स्वर से उसका नाम लेकर कहा, "अमरूद फेंक दो और भगवान का नाम लो—मैं तुम्हें गोली मारता हूँ।"

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा, "[illegible] ठीक पर [illegible] लेने दो।" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कंठ से कहा, "अच्छा [illegible]।" लाकर वह खड़ा हो गया—सिर झुकाकर। फिर उसने कहा, "अब मारो गोली।" मैंने कहा, "हँसी मत समझो, मैं तुम्हें सचमुच मारता हूँ, तुम भगवान का नाम लो।" उसने [illegible] [illegible] किया और फिर वह मन ही मन [illegible] रहा। मैंने एक हाथ से आँखें ढककर कहा, "ईश्वर की सौगन्ध! तुम्हें

मत समझो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।"

मेरी आंखों में अपनी कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मिलाकर उसने कहा, "मारो।"

क्षण-भर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्यच्युत हो जाता। पल-पल में साहस डूब रहा था। दनादन शब्द गूंज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोलियां छाती को पार कर गईं।

मैं भागा नहीं, भय से इधर-उधर मैंने देखा भी नहीं, रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद में उठाया। मुंह की धूल पोंछी। रक्त साफ किया। आंखों में इतनी ही देर में कुछ का कुछ हो गया था। देरतक उसे गोद में लिए बैठा रहा, जैसे मां सोते बच्चे को जागने के भय से निश्चल लिए बैठी रहती है।

फिर मैं उठा। ईंधन चुना, चिता बनाई और जलाई—अन्त तक वहीं बैठा रहा।

बारहों प्रधान हाजिर थे। उसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायक ने नीरव हाथ बढ़ाकर रिवाल्वर मांगा। रिवाल्वर दे दिया। कार्यसिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े होकर वैसे ही गंभीर स्वर में कहा, "तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते हैं।" मैंने कहा, "तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूं कि उसका अपराध मुझे बताया जाए।"

नायक ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया, "वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था। हमें उसपर सरकारी मुखबिर होनेका सन्देह था।" मैं कुछ कहने योग्य न रहा। नायक ने वैसी ही गंभीरता से कहा, "नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ एक पुरस्कार मांग सकते हो।"

अब मैं रो उठा। मैंने कहा, "मुझे मेरे वचन फेर दो। मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त कर दो, मैं उसीके समुदाय का हूं। तुम लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देशभक्त कहने से इन्कार कर दो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूं। मैं हत्याओं का साथी, सलाही और मित्र नहीं रह सकता। तुम तेरहवीं कुर्सी को जला दो।"

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा, "तुम्हारे इन कर्मों की सज़ा मौत है; पर नियमानुसार तुम्हें क्षमा पुरस्कार में दी जाती है।"

मैं उठकर चला आया। देश-भर घूमा, कहीं ठहरा नहीं। भूख, प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस, अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है। मेरा वारंट निकला [illegible] हो उस [illegible] चाहता [illegible] है। ओठ-मों ही मैं उसे देख और याद रख सकता हूं।

◆ ◆ ◆

हमारा उत्कृष्ट कथा-साहित्य

दाग :	यशपाल
[illegible] :	नागार्जुन
भूल :	गुरुदत्त
वनवासी	"
ममता	"
मैं न मानूं	"
परिवर्तन	"
मैली चांदनी :	गुलशन नंदा
पराई डाल का पंछी :	अमरकांत
आभा :	आचार्य चतुरसेन
धर्मपुत्र	"
पतिता	"
मोती	"
हृदय की परख	"
हृदय की प्यास	"
वासना के स्वर :	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
शोले :	भैरवप्रसाद गुप्त
बड़े सरकार	"
मंजिल	"
रम्भा	"
त्यागपत्र :	जैनेन्द्रकुमार
प्रतीक्षा :	राजेन्द्र यादव
सरहदों के बीच :	कमलेश्वर

ज्वालामुखी :	मन्मथनाथ
दिशाहीन	
सच और झूठ	
पत्थर की नाव	"
स्वप्नमयी :	विष्णु प्रभा
चन्द हसीनों के खतूत	'उग्र'
जुहू	"
बुधुआ की बेटी	"
फागुन के दिन चार	"
नीना :	अमृता प्रीतम
अशू	"
बन्द दरवाज़ा	"
हीरे की कनी	"
रंग का पत्ता	"
नागमणि	"
ग़द्दार :	कृश्न चन्दर
एक गधे की वापसी	"
एक गधे की आत्मकथा	"
प्यास	"
सपनों का क़ैदी	"
धन गांव की रानी	"
एक चादर मैली-सी :	[illegible] बे
लम्बी	

वसुन्धरा : शैलेश मटियानी
आनी आंखों का सपना :
राबिन शॉ पुष्प
एक रहस्य, एक सत्य : नानकसिंह
रजनी : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
आनन्द मठ ,,
दुर्गेशनन्दिनी ,,
देवी चौधरानी ,,
विषवृक्ष ,,
कपालकुण्डला ,,
इन्दिरा ,,
दो बहनें : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जुदाई की शाम ,,
बहूरानी ,,
काबुलीवाला ,,
गोरा ,,
आंख की किरकिरी ,,
कुमुदिनी ,,
घर और बाहर ,,
मिलन ,,

चार अध्याय : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
उजड़ा घर ,,
नीरजा ,,
देवदास : शरत्चन्द्र चट्टोपाध
चरित्रहीन ,,
शेष प्रश्न ,,
विराज बहू ,,
गृहदाह ,,
मंझली दीदी : बड़ी दीदी ,,
श्रीकान्त ,,
चन्द्रनाथ ,,
दत्ता ,,
परिणीता ,,
सुभदा ,,
पथ के दावेदार ,,
विप्रदास ,,
ब्राह्मण की बेटी ,,
अंतिम परिचय ,,
लेन-देन ,,

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक रुपया

●

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व रेलवे बुक-स्टालों तथा डाकघरों के बुक-स्टालों से मिलती हैं। अगर कोई कठिनाई हो तो सीधे हमसे मंगाइए :

हिन्द [illegible] प्राइवेट लिमिटेड
जी० [illegible] शाहदरा, दिल्ली-३२

- हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं, समाचारपत्र-विक्रेताओं, रेलवे बुक-स्टालों तथा रोडवेज़ बुक-स्टालों से मिल सकती हैं।

- देश-विदेश के प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें—उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, उर्दू शायरी, ज्ञान-विज्ञान, हास्य-व्यंग्य, स्वास्थ्य, किशोरोपयोगी एवं जीवनोपयोगी साहित्य हिन्द पॉकेट बुक्स में प्रकाशित किया जाता है। हिन्द पुस्तकें उच्चकोटि के लेखकों, आकर्षक गेटअप, सुन्दर छपाई, सस्ते दाम के लिए भारत-भर में प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है। केवल कुछ पुस्तकों का मूल्य दो रुपये प्रति है, परन्तु उनकी पृष्ठ-संख्या २५० से भी ऊपर है।

- यदि आपको हिन्द पॉकेट बुक्स प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई हो तो हमें लिखें। पांच पुस्तकें एकसाथ मंगाने पर डाक-व्यय फ्री की सुविधा भी दी जाती है। यदि आप चाहते हैं कि आपको हिन्द पॉकेट बुक्स की सूचना निरन्तर मिलती रहे तो अपना नाम, व्यवसाय और पूरा पता कार्ड पर लिखकर हमें भेज दें। हम आपको नये प्रकाशनों की सूचना देते रहेंगे।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली–३२

- हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं, न्यूज़पेपर-एजेंटों, रेलवे बुकस्टालों तथा द्वारा पुस्तकालयों से मिल सकती हैं।

- देश-विदेश के प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें—उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, शायरी, ज्ञान विज्ञान, हास्य-व्यंग्य, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान एवं जीवनोपयोगी साहित्य हिन्द पॉकेट बुक्स में प्रकाशित होता है। हिन्द पुस्तकें उच्चकोटि के लेखकों, आकर्षक टाइटल, सुन्दर छपाई, सस्ते दाम के लिए भारत-भर में प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है। केवल कुछ पुस्तकों का मूल्य दो रुपये प्रति है, परन्तु उनकी पृष्ठ-संख्या ३६० से भी ऊपर है।

- यदि आपको हिन्द पॉकेट बुक्स प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई हो तो हमें लिखें। सब पुस्तकें दुकानदार बनाने पर डाक-व्यय की भी सुविधा दी जाती है। यदि आप चाहते हैं कि आपको हिन्द पॉकेट बुक्स की सूचना निरन्तर मिलती रहे तो अपना नाम, व्यवसाय और पूरा पता कार्ड पर लिखकर हमें भेज दें। हम आपको नये प्रकाशनों की सूचना देते रहेंगे।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२